# पुरी जगन्नाथ की महिमा

रचयिता : टी. कामेश्वरराव

ति. ति. देवस्थान, तिरुपति
के 'धार्मिक पुस्तकों के प्रकाशनार्थ सहायता'
योजना के अंतर्गत द्रव्य अनुदान
से मुद्रित

प्रकाशक : टी. कामेश्वरराव

प्रथम संस्करण : 750 प्रतियाँ
1997

मूल्य : रु. 40/-

मुद्रण : शारवाणी प्रिंटर्स
श्रीनगार
विशाखपट्टणम्-16

प्रतियों के लिए : टी. कामेश्वरराव
44-7-8, प्रशान्तनगर,
ताटिचेट्लपालेम,
विशाखपट्टणम्-16

# दो शब्द

पुरी जगन्नाथ की महिमा, पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुये मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। आशा करता हूं कि मेरा यह छोटा सा प्रयास पाठकों के मन को आह्लादित करने में समर्थ होगा। इस प्रयास पर मैं परमेश्वर जगन्नाथ की अनुकंपा समझता हूँ।

इनमें यदि कोई त्रुटियाँ हो तो सूचित करने की कृपा करें ताकि मैं अगले मुद्रण में संशोधन कर सकूं। साथ ही आपके सुझाव भी आमंत्रित हैं।

विनीत

**टी. कामेश्वरराव**

विशाखापट्टणम

दिनांक 24-10-96

# आभार


पुरी जगन्नाथ की महिमा को भक्तों के सामने रखने में मदद करनेवाले भगवान् जगन्नाथ को मेरे कोटि कोटि अभिनन्दन।

इस पुस्तक को सरल, सुबोध एवं संक्षिप्त में लिखने के लिए मुझे साहित्य सरस्वती श्री रा. प्र. अरूण, एम. ए., बी. एस. टी., सं कोविद, साहित्यालंकार, भूतपूर्व प्रधानाध्यापक जे. के. पुर हाईस्कूल, भूतपूर्व प्राध्यापक, हिन्दी शिक्षण योजना, गृह मंत्रालय, भारत सरकार से काफी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला। साथ-साथ इस पुस्तक के संशोधन में श्री एन. डी. नरसिंहराव एम. ए., साहित्यरत्न भूतपूर्व सहायक निदेशक, दिल्ली ने यथा सहयोग प्रदान किया है जिसके लिए मैं अपनी कृतज्ञता एवं आभार प्रकट करता हूँ।

विनीत,

**टी. कामेश्वरराव।**

# संस्तुति

**ओ. आर. के. मूर्ति**
सहायक निदेशक
हिं. शि. यो. - विशाखपट्टणम्

श्री. कामेश्वरराव को मैं दो दशाब्दों से जानता हूँ। उन्होंने कई पुण्यक्षेत्रों का दर्शन किया जिनमें से 'पुरी' भी एक है। सहजरूप से श्री राव के मन में पुरी जगन्नाथ की महिमा का वर्णन करने का जो संकल्प आया है अत्यन्त श्लाघनीय है।

श्री राव ने विधि पूर्वक भगवान जगन्नाथ की सेवा, पूजा आदि करने का जो वर्णन इस पुस्तक में किया है, प्रशंसनीय है। पाठक गण इसे पढ़कर यथेष्ट लाभान्वित हों।

मैं भगवान जगन्नाथ से उनकी अनुकंपा श्री राव पर सदा रहने की आशा रखता हूँ।

# कृति समर्पण

हे नीलाचलवासी जगन्नाथ !
सुर, नर, किंनर, गंधर्व, 'किंपुरूष
विधि पूर्वक सेवित हे परमेश्वर
तुझको मेरे अनंत कोटि अभिनन्दन ।

उत्कल प्रदेश में उद्भूदित माधव
मुनिवर, नारद, ब्रह्मादि वंदित
अखिल लोक, ब्रह्माण्ड नायक
तुझको मेरे साष्टांग दंड प्रणाम ।

पाप विनाशक, धर्म विधायक,
अखिल लोक के हे संरक्षक
तू निरंतर नियमपूर्वक पूजित
तेरे पद-पद्म सतत वंदित ।

परम पावन पुरी क्षेत्र निवासी
हे भक्तों के भव बंधन हारी
बलराम, सुभद्रा संग एवं सुदर्शन धारी
करो अनुग्रह हम पर हे कृष्ण मुरारी ।

करो कृपा निज भक्त कोटि पर
देकर अपनी भव्य-दिव्य शक्ति
मनावें रथोत्सव प्रतिवर्ष तुम्हारा
करो दूर संचित भव-पाप हमारा ।

कब सुनोगे हे प्रभु, हे कमलेश!
"कामेश" की चिर-दीर्घ चीत्कार
रहे सदैव इस दास का अनु बन्धन
सदा सतत तेरे चरणों का ।

# पुरी जगन्नाथ की महिमा

## भाग - 1

भारत देश अनेक देवालयों, पुण्य तीर्थों, महिमान्वित नदियों, पवित्र स्थलों, महात्माओं, ऋषि पुंगवों, मुनियों, महर्षियों, देवियों, देवों आदि का उद्गम स्थल है। जब-जब धर्म की हानी हुई, अधर्म का प्रकोप बढ़ गया, पाप के बोझ से भू देवी दब गयी, तब-तब भगवान् अवतार लेकर इस पृथ्वी पर आये और उन्होने शांति की स्थापना की। साथ-साथ परमेश्वर ने मुनियों द्वारा लोगों को धर्म-लाभ पाप-क्षय एवं उनसे प्राप्त स्थान, फल आदि के बारे में बताकर भारत-वासिमों को कृतकृत्य किया।

इसी श्रृंखला में पुरी जगन्नाथ की महिमा के जिज्ञासु मुनियों को जैमिनी महर्षि ने अनेक विषयों की जानकारी दी। महर्षि ने बताया कि, जगन्नाथ क्षेत्र और पुरूषोत्तम क्षेत्र दोनों एक ही है। यह विषय परम गोपनीय है फिर भी मैं आप लोगों का कुतूहल देखकर स्पष्ट करता हूँ। पुरी नगरी में जगन्नाथ मनुष्य लीला से काष्ठ तन धारण कर निवास करते हैं। अतः यहाँ रहनेवाले सभी लोग पापरहित हैं। इस पुण्य क्षेत्र का क्षेत्रफल दस योजन है। इस के मध्य में नीलाचल है। पहले भगवान् ने वराह रूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार किया और पृथ्वी समतल होकर पर्वतों से सुस्थिर हो गयी है।

ब्रह्मा की प्रार्थना से श्री हरि प्रत्यक्ष होकर बोले कि दक्षिण सागर के उत्तर में महानदी के दक्षिणी भाग में स्थित वह पुरी प्रदेश सर्वतीर्थफलप्रद है। मैं, सर्वसंग परित्यागी होकर वहाँ देहधारी बनकर निवास करता हूँ। मेरे पुरूषोत्तम क्षेत्र में सृष्टि, स्थिति एवं लय के लिये स्थान नहीं है। नीलाद्रि के अंतर्भाग में कल्पवट वृक्ष है। इसके पश्चिमी कोने में रौहिण नामक एक कुंड है। भगवान ने कहा कि तट के निवासी जो अपनी चर्मचक्षुओं से मुझे देखते हैं, उस कुंड के जल की महिमा से वे पापरहित होकर मेरे सायुज्य को प्राप्त करते हैं। व्रतों के आचरण एवं तीर्थों में परिशुद्ध आत्माओं को प्राप्त होने वाले पुण्य जो बताए गये हैं वे सभी पुण्य उस पुरूषोत्तम क्षेत्र में एक सुबह बिताने से प्राप्त होंगे। वहाँ कम-से-कम एक निःश्वास समय तक रहने से भी उन्हें अश्वमेघ याग के फल की प्राप्ति होगी।

## भाग – 2

उस परमेश्वर के दर्शन से ब्रह्मा फूले न समाये और वे उनकी स्तुति करने लगे। उसी समय एक कौआ वहाँ के कुंड में डुबकी लगाकर, कृपानिधि माधव को देखकर, पृथ्वी की परिक्रमा करते हुये, अपने कौआ का शरीर तज कर, शंकचक्रगदा पाणि की बगल में आकर रह गया। हरि के दर्शन से कौए को मोक्ष प्राप्त हो गया। यह जगन्नाथ क्षेत्र अज्ञान को दूर करनेवाला है। इस क्षेत्र की महिमा अपार है।

कौआ, माधव की अद्भुत मूर्ति का ध्यान करते समय यमराज ने अपनी विधि एवं स्वधर्म की पूर्ति के लिए नीलाद्रि

पर स्थित माधव को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया तथा उस जगन्नाथ की प्रशंसा एवं महिमा का गान किया। फिर यमराज ने उनके वक्षस्थल पर स्थित लक्ष्मी देवी को भी प्रणाम किया। विष्णु के नयनों से आज्ञा पाकर लक्ष्मी देवी ने यमराज से कहा कि इस जगन्नाथ क्षेत्र पर ब्रह्मादि देवताओं का अधिकार नहीं होगा। इस पुण्य क्षेत्र में कर्म का परिपक्व होनेवाले पुनः कभी जन्म नहीं लेंगे। इस पुरूषोत्तम क्षेत्र में साक्षात् शरीरधारी भगवान नारायण के दर्शन कर लोग कर्म बंधनों से मुक्त हो रहे हैं। यहाँ जीव जीवन्मुक्त हैं, वे मुमुक्षु होकर निवास कर रहे हैं। नरक एवं स्वर्ग की सृष्टि करनेवाले यही पुरूषोत्तम हैं। फिर यमराज ने लक्ष्मी देवी से मरनेवालों को मुक्ति का विधान, इस क्षेत्र का क्षेत्र-फल, यहाँ निवास करने पर प्राप्त फल, यहाँ के अन्य तीर्थों की महिमा, अन्य गोपनीय विषय आदि विषयों के बारे में बताने का आग्रह किया।

## भाग - 3

लक्ष्मी देवी ने यमराज से कहा कि हे रविनन्दन! मैं इस क्षेत्र की अद्भुत महिमा बताती हूँ, सुनो। प्रलय के समय यह विश्व लीन होते समय मैं और यह क्षेत्र मात्र थे। तब मृकुंड़ के पुत्र मार्कंड़ेय मुनि सात कल्पों तक आयु-क्षय होने पर भी प्रलय के समय स्थावर, जंगम नाश होने पर वे भी डूब गये थे। जल में इधर-उधर ड़ुबकी लगाते हुए पुरूषोत्तम क्षेत्र के समीप उन्होंने एक वटवृक्ष को देखा। उस वृक्ष पर चढ़ते समय उन्होंने एक बच्चे के वचनों को सुना। हे मार्कंड़ेय! मेरे समीप आकर सब दुःख भूल जाओ। तब

मार्कंडेय ने आश्चर्य चकित होकर दुःख को भूल गया। प्रलय काल में भी, वह पुरूषोत्तम क्षेत्र सागर में एक नौका जैसा दिखाई दिया। उस मुनि को चिंतित देखकर लक्ष्मी देवी ने उन्हें उस मनोहर वृक्ष के पास आने के लिए कहा। मुनि ने आगे बढ़कर लक्ष्मी देवी को देखा। बाद में उन्होंने सभी बाधाओं से विमुक्त होकर भगवान् नारायण को साष्टांग प्रणाम कर, उनके विविध रूपों, गुणों, शक्ति, आदि की विस्तृत रूप से स्तुति की।

भगवान् ने मार्कंडेय पर अनुकंपा दिखाते हुए उन्हें दीर्घायु देते हुए वहाँ के विशाल वृक्ष के खोखले में प्रवेशकर रखं को कहा। उस मुनिके वृक्ष पर चढ़कर एक बालरूप को देखा। उन्होंने उनके मुख से प्रवेश कर, कंठ मार्ग द्वारा, विशाल उदर में प्रवेशकर, चतुर्दश भुवनों को देखा। उन्होंने उस बालक के गर्भ में ब्रह्मादि देवता, दिक्पालक, सिद्ध, गंधर्व राक्षस, ऋषि, देवर्षि, भू प्रदेश, सकल तीर्थ, नदियाँ, पर्वत, अरण्य, नगर, गाँव आदि के अतिरिक्त उन्होंने नागकन्या, ऊँचे मणिसौध, सप्त पाताल, अमूल्य मणि भूषित सर्पों द्वारा सेवित शेष को भी देखा जिन्होंने व्याकरण की रचना की थी। वे अनेक शिष्यों से घिरे हुये थे। इस मुनि ने बालक के पेट में परिक्रमा लगायी पर उसका अंत नहीं पा सका। उन्होंने बाहर आकर पहले जैसे पुरूषोत्तम को विस्मित नयनों से देखा।

मार्कंड़य मुनि ने भगवान् से पूछा कि आपकी माया मुझे कैसे मालूम हो सकती है? इस पर भगवान् ने कहा कि यह क्षेत्र विचित्र सा है, शाश्वत है और यहाँ सृष्टि, प्रलय और संहार नहीं होते। जो यहाँ प्रवेश करेगा उसका

पुनर्जन्म नहीं होगा। तब उस मुनि ने वहीं रह जाने का निश्चय किया।

आगे मार्कंडेय ने भगवान से मृत्युंजय बनने का उपाय बताने की प्रार्थना की। वे बोले कि मैं सदा इस मोक्षप्रद क्षेत्र में वास करूँगा, इसमें संदेह नहीं। मैं तुम्हारे लिए प्रलय के समय शाश्वत तीर्थ का निर्माण करूँगा। तुम इसके तट पर निष्ठापूर्वक मेरे द्वितीय शरीरवाले, शिव की आराधना करो। मेरी करुणा से तुम अवश्य मृत्युंजयी बनोगे।

जैमिनी महर्षि ने ऋषियों से कहा – मार्कंडेय ने विष्णु से ऐसा वर प्राप्त कर वटवृक्ष के वायव्य कोण पर श्री हरि के चक्र से खोदे गये पवित्र गड्ढे में निवास करने वाले महेश्वर की पूजा कर, कठोर तपस्या कर, अल्प समय में ही मृत्यु को जीत लिया। जो कोई उस गर्त में स्नान कर शिव का दर्शन करेगा, वह अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त करेगा।

लक्ष्मी देवी ने यमराज से कहा कि समुद्र के भीतर स्थित यह क्षेत्र पाँच क्रोश विस्तीर्णवाला है। यहाँ विश्वेश्वर साक्षात् नारायण होकर, इंद्रियों को जीतकर, जगन्नाथ की उपासना के लिए समुद्री तट पर वास करते हैं। ये महेश्वर, यमबन्धन से दूर करनेवाले होनें के कारण, यमेश्वर के नाम से विख्यात हुये। जो इस ईश्वर के दर्शन एवं पूजा करेगा वह करोड़ लिंगार्चन से प्राप्त फल को प्राप्त करेगा।

## भाग - 4

लक्ष्मी देवी ने यमराज के आग्रह पर आगे बताया कि जगन्नाथ क्षेत्र शंखाकार सा है। इसके ऊर्ध्व भाग में

वृषभध्वज नामक भगवान हैं जो भक्तों की इच्छाओं को पूरा करते हैं। इस क्षेत्र के अंत में नीलकण्ठ नामक भगवान हैं। क्रोश परिमाण वाला यह क्षेत्र साक्षात् श्रीमन्नारायण का निवास स्थान होने के कारण अति दुर्लभ एवं परमपावन है। समुद्री जल इस क्षेत्र के उदर भाग को छूता है। जो इस तीर्थ पर वास करेगा, इस पुण्यक्षेत्र में अपना देह तजेगा एवं समुद्र तीर्थ में स्नान करेगा, वह मुक्ति को प्राप्त करेगा।

रुद्र ने जब क्रोध से ब्रह्मा के पंचम सिर को खंडित किया तब ब्रह्मा ने उस कपाल को पुरूषोत्तम क्षेत्र के समीप छोड़ दिया। इस क्षेत्र के द्वितीयावर्त के पास कपाल मोचन नामक लिंग है। जो कोई उस लिंग को देखेगा, पूजा करेगा या प्रणाम करेगा वह ब्रह्म हत्या पाप से मुक्त होगा। यहाँ पर स्थित कपालमोचनलिंग के दक्षिणपार्श्व में जो अपनी देह तजेगा उसका पुनर्जन्म नहीं होगा।

लक्ष्मी देवी ने यमधर्मराज से आगे कहा कि इस क्षेत्र के तृतीयावर्त पर स्थित प्रथम शक्ति का नाम विमल है। जो इस शक्ति को भक्तिपूर्वक प्रणाम एवं स्तुति करेगा उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण होंगी और अंत में वह मुक्ति को प्राप्त करेगा। चक्रपाणि विष्णु द्वारा कपालमोचन लिंग के समीप अराशिनी नामक शक्ति का प्रतिष्ठापन हुआ है। जो उस शक्ति को देखकर प्रणाम करेगा वह शाश्वत भोगों को प्राप्त करेगा। यहाँ के कोट, पक्षी एवं मानव जन्म-मरण रहित होकर मुक्ति को प्राप्त करेंगे। पृथ्वी, आकाश और स्वर्ग के साढ़े तीन करोड़ तीर्थों में श्रेष्ठ यह पुरूषोत्तम तीर्थ; सुप्रसिद्ध हुआ है। यहाँ का रोहिण कुंड सदैव जल से भरा रहता है। इसका जल प्रलय काल में वृद्धि होकर फिर इसी में लीन हो

जाता है, अतः इस कुंड का नाम रौहिण पड़ा। इसीलिए हे यमधर्मराज ! इस क्षेत्र पर तुम्हारा अधिकार नहीं होगा। तुम प्रेतराजा हो। यहाँ पर स्थित मोक्षाधिकारियों पर तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।

लक्ष्मी देवी ने ब्रह्मा से कहा - हे पितामह ! विष्णु के दक्षिण में स्थित नृसिंहस्वामी हिरण्यकशयप के वक्षस्थल को चीरकर उज्जवल प्रभा से चमक रहे हैं। जो इनके दर्शन करेगा वह पापरहित होकर भुक्ति-मुक्ति को प्राप्त करेगा। जो इसकी सन्निधि में प्राण छोड़ेगा, वह ब्रह्म सायुज्य को प्राप्त करेगा। यहाँ के स्वल्प सत्कर्म भी करोड हो जायेंगे। कल्पवृक्ष की छाया में जाने या अनजाने जो प्राण छोड़ेंगे उसकी अविद्या का नाश होगा। उपदेश प्राप्त साधक, यदि यहाँ प्राण छोड़ेंगे, तो उसे, उसी क्षण मुक्ति प्राप्त होगी। इसमें संदेह नहीं।

लक्ष्मी ने कहा कि जिस प्रकार मूर्ख, गंगाजल छोड़कर गंदे गड्ढे के पानी पीने के लिए उत्सुक होता है उसी प्रकार मूढ इस पुरुषोत्तम क्षेत्र के दर्शन न कर अन्य क्षेत्रों के दर्शन के लिए जाता है। वह मूढ़, विष्णु माया से, निश्चित रूप से बंधित होगा। उसे कितना भी उपदेश देने से कोई लाभ नहीं। विष्णु रूपधारी यह भगवान् प्रत्यक्ष रूप से हैं, और अनुभूतिवाले हैं। उनके समीप अंतर्वेदी की रक्षा के लिए अष्ट शक्तियाँ हैं।

पहले रुद्र ने कठोर तपस्या की और मैंने गौरी को उनकी पत्नी बनने के लिए उत्पन्न किया। बाद में वह सौंदर्यवती मेरे शरीर से निकली। मैंने उसे मेरे प्रियवचनों का पालन करने का आग्रह किया। मुझ पर प्रसन्न होकर

गौरी आठ रूपों का धारण कर आठों दिशाओं में वास करने लगी। वट की जड़ में मंगला शक्ति पश्चिमदिशा में विमला शक्ति और शंख के पीछे सर्वमंगला शक्ति हैं। कुबेर की तरफ अर्धाशिनी एवं लंबा नामक शक्तियां हैं। दक्षिणी दिशा में कालरात्रि तथा पूर्व दिशा में मनीचिका एवं चंडरूपा शक्तियां हैं। इन उग्ररूपों से अंतर्वेदी की रक्षा हो रही है। इन शक्तियों के दर्शन एवं कीर्तन करनेवालों के सभी पाप दूर होकर वे अश्वमेध-फल को प्राप्त करेंगे।

शिव ने विष्णु से उत्तम वर प्राप्त करने के लिए तपस्या कर प्रार्थना की कि आप जहां रहें वहां मैं भी सुख से रहूँ। आप मेरे लिए सब कुछ हैं। आपकी महिमा को न जान कर मूर्ख अपवित्र एवं अशाश्वत विषयों में फँसकर तृप्त हो रहे हैं। मैं आपकी शरण में आया हूँ।

जैमिनी महर्षि ने मुनियों से महेश्वर के अष्ट लिंगों के बारे में इस प्रकार बताया - हे मुनियो! विष्णु बीच में रहते हुए अन्य सभी दिशाओं में उन्होंने रुद्र को क्षत्रपाल के रूप में नियुक्त किया। वहां कपालमोचन क्षेत्रपाल हैं। यमेश्वर, मार्कण्डेय, ईशान, बिल्वेल, नीलकंठ, वटेश-इन आठ नामों से महेश्वर के अष्ट लिंग प्रतिष्ठित हुये। जो इन लिंगों का स्पर्श, दर्शन एवं पूजा करेगा वह मुक्ति पायेगा। इस क्षत्र में प्राण तजनेवालों पर यम का अधिकार नहीं होगा।

लक्ष्मी देवी ने ब्रह्मा से कहा कि इन्द्रद्युम्न नामक राजा सत्ययुग में उद्भव होगा जो यहां आकर अपनी अनन्य भक्ति प्रकट करेगा। वह भगवान् की प्रीति के लिए एक हजार अश्वमेध यागा करेगा। एक काष्ठ को चार भागों में

बाँटकर चार प्रतिमाएँ बनायेगा। उस राजा के श्रम से आप हमारे लिए योग्य प्रतिमाओं का प्रतिष्ठापन करेंगे। इसे सुनकर ब्रह्मा और यमराज अपने - अपने धाम को चले गये। वे पुरूषोत्तम क्षेत्र की महिमा का संस्मरण करते हुए आश्चर्य से पुलकित हो रहे थे।

जैमिनी ने मुनियों से कहा कि इन्द्रद्युम्न की तपस्या से शंखचक्रधारी विष्णु ने काष्ठमय देह धारण की। विष्णु ने लोक कल्याण के लिये काष्ठ से बने हुए सुदर्शन चक्र को धारण कर सुभद्रा, बलराम सहित विराजमान हुए। उन्होंने भक्तों के संचित पापों को दूर कर मुक्ति प्रदान की। उन्होंने अनेक दिव्यावतार धारण किये जिनकी महिमा एवं अद्भुत कार्यों के विषयों में महात्माओं ने वर्णन किया। अनन्य स्वरूपवालों को उनसे सुख प्राप्त होता है। संसार के दुःखों को दूर कर अव्यय सुखों को देने के कारण ब्रह्म की काष्ठमय रूप में वेदों में स्तुति की गयी है। यह विष्णु का निरूपमान उत्तम स्थान है।

जैमिनी ने मुनियों से कहा - "हे मुनिगण! जगन्नाथ, दीनों के और अनाथों के शरणार्थी होकर उन्हें भवसागर से पार कर रहे हैं। अतः उनके चरण चराचर कोटि प्राणियों के लिए वंदनीय है। पुरूषोत्तम भक्त परायण, जगत के लिए कारणभूत, सृष्टि स्थिति व संहार के लिए भी कारणभूत, सर्वपापियों के लिए मोक्षदाता, एवं सभी को सुख और शांति प्रदान करनेवाले हैं। वे योगियों के लिए आश्रयदाता, विश्व के भार को ढोनेवाले, बहुभाषा प्रवीण, सभी दुष्कर्मों के दोष को दिखाने वाले, सभी पापों का नाश करनेवाले, नीलाद्रि - निवासी हैं। वे निश्चेष्ट होने पर भी दिव्य लीलाओं का

प्रदर्शन करनेवाले हैं। उनके प्रति कम भक्त दिखाने मर भो वे उनके सैकड़ों पापों को दूर करते हैं।"

जैमिनी ने पुंड़रीकांबरीषों के चरित्रों के बारे में मुनियों से कहा कि वे दोनों काष्ठमय देहधारी की लोला से कुरुक्षेत्र में ब्राह्मण और क्षत्रिय बनकर पैदा हुए। वे दोनों मित्र शील भ्रष्ट होकर मोह में फँस गये। धर्म रहित होकर महापाप करने से लोगों ने उन्हें दोषी ठहराया। वे शराब पोकर वेश्याओं के साथ जीवन बिताते थे। एक दिन वे दोनों एक यज्ञशाला के समीप गये जहाँ शास्त्रविहित स्तोत्र सुनाई देता था। उन दोनों ने वेद प्रोक्तों से संबंधित सभी कर्मों पर श्रद्धा दिखाई। उन दोनों ने अपनी - अमनी जाति का स्मरण किया और अपने दुश्चरित्र एवं कलुषित दुष्कर्मों पर दु:ख प्रकट किया। उन दोनों ने वहाँ के ब्राह्मणों को प्रणाम किया और अपनें पाप कर्मों के बारे में उनसे बार - बार बताने लगे तो उन्होंने कहा कि आपके पापों का प्रायश्चित होना असाध्य है। तब उनमें से एक श्रेष्ठ वैष्णव पुंग ने हँसते हुए कहा कि तुम दोनों पुरूषोत्तम क्षेत्र जाओ। वहाँ पुरूषोत्तम काष्ठमय रूप सेविराजमान हैं। उन शंखचक्र गदा धारी जगन्नाथ की आराधना करनें से तुम्हारे पाप नष्ट हो जाएँगे और तुम दोनों को अवश्य मुक्ति मिलेगी। तुम दोनों दक्षिणी समुद्र तट पर स्थित पवित्र उत्कल देश में नीलाद्रि शिखर पर स्थित शरण दाता जगन्नाथ स्वामी के दर्शन के लिए जाओ। वे कृपानिधि हैं। वे तुम्हारे पापों का क्षय कर इच्छाओं को पूरा कर सकते हैं। उस वैष्णव पुंग के वचनानुसार वे दोनों पुरूषोत्तम क्षत्र के लिए चल पड़े।

# भाग - 5

पुंड़रोक और अंबरोष शुद्ध आहार का सेवन करते हुये, वेश्याओं की संगति से मुक्त होकर विष्णु का ध्यान करते हुये नीलाद्रि निलय पहुँचे पर उन्हें भगवान् के दर्शन नहीं मिले तो उनके दर्शन होने तक उन्होंने भोजन करना बंद कर दिया। इसके तीसरे दिन तीसरे पहर उन्हें एक ज्योति दिखाई दी। सातवें दिन आधी रात में उन्हें भगवान के दर्शन हुए। वे दोनों दिव्य - ज्ञान - संपन्न हो गये।

उन दोनों ने शंखचक्रगदापाणि, दिव्यालंकार भूषित एवं प्रसन्न वदन जगन्नाथ को लक्ष्मो द्वारा दिये गये तांबूल, हरि को स्वीकार करते हुए देखा। उउ दोनों ने कुछ युवतियाँ सज - धज कर गंध, तेल, दीपों को हाथ में लिए, एक रूपवती को हरि के पीछे रत्नमयछत्र को धारण करते हुये, कुछ स्त्रियों को हरि के सम्मुख कृष्णागुरु धूप युक्त पात्र लेकर जाते हुए एवं एक अप्सरा का मंदहास करते हुए, देखा भगवान् ने, स्तुति करते हुए भक्तों को अपनी कृपा की दृष्टि से, सिद्ध, मुनि, दिव्य एवं सनकादि को मंदहास के साथ एवं मनोहर ढंग से गान करते हुए गंधर्वों पर अनुग्रह किया। उस ब्राह्मण और क्षत्रिय ने हरि के स्वरूप का ध्यान करते हुए प्रह्लादादि को एवं श्रेष्ठ वैष्णवों के चित्तों को भगवान् की देह में लीन होते हुए देखा। उनकी लीलाओं को देखा! हरि की कृपा से क्षण भर में वे दोनों सर्व विद्यापारंगत हो गये।

पुंडरीक ब्राह्मण ने हर्षोल्लास से जगन्नाथ की स्तुति इस प्रकार की - "हे जगन्नाथ! हे परमात्मा! हे परात्पर हे जगदोद्धारक! आपको मेरे कोटि - कोटि प्रणाम। आपकी

लालाओं को कोई भी कभी भी नहीं जान सकता। इस दीन, शरणागत मूढ़, पापी, भवसागर पतित पर आप अनुग्रह करें। हे करुणा सागर! आप ही मुझे इस भवसागर से पार कर सकते हैं। मुझे आपके पदपंकज पर सदा दृढ़ भक्ति रहने का वर दीजिये। इस प्रकार वह ब्राह्मण गद् - गद् स्वर से नयनों की गंगा बहाते हुये एवं त्राहि - त्राहि कहते हुये जगदीश के चरण कमलों पर गिरा।"

अंबरोष क्षत्रिय ने भी जगन्नाथ स्वामी की स्तुति इस प्रकार की - "हे असंख्य सिर और भुजाओंवाले! हे सर्वात्मा! हे छत्तीस तत्वों से अतीतवाले! आपको मेरे प्रणाम। आपके नाम संकीर्तन से ब्रह्महत्यादि पाप नाश हो रहे हैं एवं सर्व सिद्धियाँ प्राप्त हो रही हैं। आपके चरणों पर मेरी दृढ़ भक्ति सदा बनीं रहे। अब आप मेरे लिए अनन्य स्वामी हैं। मैं आपकी शरण चाहता हूँ। आप मुझ पर कृपा करें। इस प्रकार स्तुति करते हुये अंबरोष उनके अनुग्रह के लिए जगन्नाथ के पाद पद्मों पर आ गिरा।"

वे विष्णु माया से मोहित होकर अपने स्वप्नों में देखी गयी वस्तुओं को नहीं जान सके। आँखें खोलने के बाद उन्होंने हरि के रूप को उसी प्रकार पाकर अत्यंत खुश हुए। पुंडरीकांबरीषों ने हरि को उसी दिवय सिंहासन स्थित, दिव्य कुंडल भूषित, शंख चक्रागदा प्रदम धारी, श्री वत्सांकित एवं कौस्तुभ मणिधारी, दिव्यांगधविभूषित, सुधासागर प्रकाश होते समय उनके दक्षिणो पार्श्व में हलायुध को देखा। उन्होंने बलराम को सहस्त्रफणियुक्त नागराज, धवल वर्ण, कुंडलोज्वल, विचित्रवनमालो, शखचक्रगदा पद्म समुज्वल चतुर्भुज, नतक्लमषनाश एवं तेजामान को देखा। उन दोनों न

जगन्नाथ और बलराम के बीच सुभद्रा को देखा। वह सुभद्रा कुंकुमारुण, भद्र, सर्वलावण्यनिलय एवं सर्वदेवनमस्कृत होकर विराजमान हो रही थी।

इतना ही नहीं, पुंडरीक, अंबरीष ने लक्ष्मीसहृदय-पंकजवासिनी, वराब्ज धारिणी, प्रसन्न कल्पलतिका, सर्वकल्मषनाशिनी, देवतारिणी, विष्णुपार्श्वस्थित लक्ष्मी देवी को, विष्णु वामपार्श्वस्थ चक्र को भी देखा। उन दोनों ने काष्ठ से निर्मित, स्वर्ण भक्ति समुज्जवल, चार भागों में स्थित विष्णु स्वरूप को, अरुणोदय के समय देखने से सोचा कि उनके श्रम का फल प्राप्त हुआ है। वे दोनों स्वप्न लीलाओं का स्मरण करने पर आश्चर्य चकित हो गये। वे दोनों अपने द्वारा किये गये पाप कर्मों के बारे में अपने आपको कोसते हुए, पश्चात्ताप करते हुए, विष्णु को पृथ्वी पर चार भागों में अवतरित होते हुए देख अत्यंत आनंदित हुए। फिर उन दोनों ने प्राण रहते तक क्षुद्रकामपराङ्‌मुख होकर अन्य जगह नहीं जाकर, यहीं रहकर, नारायण का नाम सदा जपते हुए अंत में मुक्ति प्राप्त की।

जो पापनाश करने वाली इस चरित्र को सुनेगा या अत्यंत प्रसन्न होकर कीर्तन करेगा, वह परमानंदभरित एवं पापरहित होकर विष्णु के सन्निधान को पहुँचेगा।

## भाग - 6

मुनियों ने जैमिनी महर्षि से पूछा कि जिस प्रदेश में पुरूषोत्तम क्षेत्र है, जहाँ नारायण, काष्ठ विग्रह से प्रकाशमान हो रहे हैं उस विषय में सविस्तार बतावें। जैमिनी ने कहा

कि उत्कल प्रदेश परम पावन है। वहाँ अनेक तीर्थ एवं मंदिर हैं। वह प्रदेश दक्षिणी समुद्र के तट पर है। वहाँ के लोग सदाचार, सुशील एवं अध्ययन सपन्न हैं। वह प्रदेश अष्टादश विद्याओं का निधि है। वहाँ हर एक घर में लक्ष्मी निवास करती है। वहाँ के वैष्णव लोग लज्जाशील, जितेंद्रिय, शारीरिक एवं मानसिक रोगों से मुक्त हैं। वे पितृ भक्त एवं मातृभक्त होने के साथ-साथ सत्यवादी भी हैं। उस देश के लोग दीर्घायु और परहित के चाहनेवाले हैं लेकिन वे लुब्ध, शठी तथा छली नहीं हैं। वहाँ की स्त्रियाँ सुन्दर, पतिव्रता सुशीला, धर्मरत, सर्वालंकार भूषित एवं कुलशील में निपुण हैं।

उत्कल प्रदेश में स्थित क्षत्रिय स्वकर्मनिरत, प्रजा-रक्षणशोभित, दानतार एवं शस्त्र-शास्त्र विशारद हैं। वे सदा अधिक दक्षिणा देकर यज्ञ करते हैं। उनके घरों में अतिथि अपनी इच्छा से भी अधिक सत्कार प्राप्त करते हैं।

उत्कल प्रदेश के कृषि, वाणिज्य एवं गायों की रक्षा करनेवाले हैं। वे ब्राह्मणों को अधिक धन देकर तृप्त करते हैं। वहाँ के वैश्य संगीत, काव्य, शिल्पकला में निपुण एवं प्रियवादी हैं।

उत्कल प्रदेश शूद्र धार्मिक, स्नान, दान एवं क्रियारत हैं। वे मन, वाक् और कर्मों से दान धर्म करते हुए ब्राह्मणों की सेवा करते हैं। अन्य जातिवाले अपने - अपने धर्मों का आचरण करते हैं।

वहाँ की ऋतुएँ अपने नियमों को नहीं तजतीं। समय पर पानी बरसता है। वहाँ अकाल नहीं पड़ता। यह प्रदेश सभी गुणों से सुसंपन्न है। यह उत्कल प्रदेश नारियल,

आमला, अशोक, नागकेसर, कटहल, कपित्थ, चपक, नींबू, आम, कदंब, नारंगी, मंदार, पारिजात, चंदन खजूर एवं विविध वृक्षों तथा लताओं से भरपूर्ण है। यह प्रदेश, विविध हिंसक पशुओं से भरे वन, पर्वत, झरने, नदी, समुद्र, झील, कंदरा, गुफा आदि से सुशोभित है। यह ओड्र प्रदेश, ऋषि-कुल्या से लेकर स्वर्णरेखा एवं महानदियों के बीच स्थित है। यहाँ, पुरूषोत्तम क्षेत्र को भूतल पर स्वर्ग माना जाता है।

## भाग - 7

जैमनी ने मुनियों से इन्द्रदयुम्न महाराज के कृतयुग के चरित्र को इस प्रकार बताया। सूर्यवंश में पैदा हुआ इंद्रदयुम्न धर्मात्मा, सत्यवादी एवं सदाचारी था। वह अपनी प्रजा को अपनी संतान के समान मानता था तथा धर्मानुसार शासन करता था। वह राजा शूर, वीर, पितृभक्त परायण एवं अष्टादश विद्याओं में ब्रह्मा से भी बढकर था। वह सर्वगुण संपन्न, जितेंद्रिय और वैष्णव था। वह ऐश्वर्य में इंद्र, धन संचय में कुबेर जैसा था। उसने अनेक राजसूय याग तथा सहस्त्र अश्वमेध याग किये। वह मालव देश का प्रसिद्ध अवंती नगरवासी था। वह साधारण आदर्श जीवन बिताता था तथा विष्णु भक्ति पर सदा तत्पर रहता था।

एक बार भरी सभा में जब इन्द्रदयुम्न ने साक्षात् जगन्नाथ स्वामी के दर्शन के बारे में पूछा तो एक वृद्ध ब्राह्मण ने इस प्रकार कहा - उड़ीसा प्रदेश के समुद्री तट पर पुरूषोत्तम क्षेत्र है जहाँ जंगल से भरा नीलगिरि है। उसके ऊपर एक कोश लंबा कल्पवृक्ष है जिसकी छाया पड़ने से

ब्रह्महत्या पाप दूर हो जाताहै। यहीं रौहण कुंड है जो सदा जल से भरा रहता है और उस पानी को छूने मात्र से लोगों को मुक्ति मिल जाती है। इसकी पानी से स्नानकर पुरूषोत्तम के दर्शन करने से एक हजार अश्वमेधयोग के फल के साथ - साथ मुक्ति भी प्राप्त होती है। इसकी पश्चिमी दिशा में शबर दीपक अश्रम है जहाँ से विष्णु के मंदिर तक जाने के लिए एक तंग रास्ता है। हम भगवान् के दर्शन के लिए हर रात को यहाँ आये देवताओं के विविध स्तुति वचनों को, सुन सकते हैं। इस प्रकार की महिमा अन्य विष्णु क्षेत्रों में नहीं दिखाई देती यहाँ कौआ माधव के दर्शन कर अपने पक्षी देह को छोड़कर मुक्ति को प्राप्त हुआ। उसी प्रकार एक अज्ञानी प्यास से तड़पते हुए रौहिण कुंड के पास आने से कालवश उसकी मृत्यु हो गई, लेकिन उसने विष्णु सायुज्य पालिया। पहले मैं भी मूर्ख था पर हरि की कृपा से अब अष्टादश विद्या में प्रवीण हूँ। अब आदिशेष के समान हूँ और सदा विष्णु के सिवा अन्यों की और नहीं देखता हूँ। उस वृद्ध ने राजा को पुरूषोत्तम क्षेत्रवासी श्री जगन्नाथ की सेवा करने जाने के लिए कहा और वह अदृश्य हो गया।

राजा इन्द्रदयुम्न ने अपने पुरोहित से जगन्नाथ के दर्शन के लिए अपनी उत्सुकता दिखाई तथा उनकी इच्छा पूरी करने के लिए उसने उससे सहायता माँगी। पुरोहित ने कहा कि मैं अपने छोटे भाई विद्यापति को वहाँ भेजूँगा जो मंदिर के पास ले जानेवाले काँटों से भरे रास्ते को साफ करायेगा। राजा ने पुरूषोत्तम क्षेत्र के भगवान के समीप रहने के लिये अपना निश्चय प्रकट किया तथा उसने अपने अंत;पुर में प्रवेश किया।

विद्यापति अपने भाई के कथनानुसार कुछ विश्वास-पात्र एवं गुप्तचरों के साथ पुरुषोत्तम क्षेत्र के लिए रवाना हुआ। उसने इस पवित्र कार्य को शिरोधार्य समझा। मैं शीघ्र जगन्नाथ के दर्शन कर सकूंगा यह सोचकर वह फूला न समाया। उसने मन में भगवान् की लीलाओं का स्मरण करते हुए, उनकी महिमा का संस्मरण करते हुए प्रफुल्ल वदन होकर संध्या समय ओड़िसा प्रदेश में प्रवेश किया। रथ से उतर कर सायंकाल के सध्यावन्दन से निवृत्त होकर उसने मधुसूदन का स्मरण किया। वह फिर रथ में बैठा और रात के बीतने के बाद प्रातः कालीन कार्यों से निवृत्त होकर गोविंद का स्मरण करते हुए पुनः रवाना हुआ। उसने रास्ते में वैष्णव जनों को देखा जिनके शरीर पर शंख, चक्र, गदा के चिह्न दृष्टिगोचर होते थे। उसने वहाँ गगनचुंबी नीलाचल को देखा लेकिन उसे ऊपर जाने के लिए रास्ता नहीं दिखाई दिया तो पर्वत की तलहटी में वह कुशों को बिछाकर सो गया।

विद्यापति ने पर्वत के पिछले भाग में भक्ति संबंधी कुछ रहस्य वचनों को सुना। उसने उस आवाज का अनुसरण करते हुए शबरदीपक नामक प्रसिद्ध जनपद में प्रवेश किया। वहाँ विश्वावसु नामक शबर से उसकी मुलाकात हुई।

विश्वासवु ने विद्यापति से वहाँ आने का कारण पूछा और विश्राम करने के लिए उसे आसन देकर, उसकी भूख-प्यास मिटाने का प्रबंध किया। विद्यापति ने अपना परिचय देते हुए वहाँ आने का कारण बताया तथा उससे विष्णु भगवान को बताने का आग्रह किया और बोला कि विष्णु

के दर्शन होते ही वह तुरंत वापस जाकर इन्द्रद्युम्न महाराज को यह समाचार सुनायेगा।

## भाग - 8

विश्वावसु ने पहले विद्यापति की बातों से व्याकुल हुआ क्योंकि जनार्दन यहाँ गोपनीय बनकर स्थित हैं और अब उनका पता लग जाने से मैं इहलोक तथा परलोक में भी कहीं का नहीं रहूँगा। फिर अचानक उसे बहुत पुरानी बातें याद आयीं। वह यह है कि इन्द्रद्युम्न मानव शरीर से ब्रह्मलोक जाएगा और ब्रह्मा के साथ लौटकर एक सौ अश्वमेघयाग करेगा और काष्ठ मूर्ति रूप विष्णु को चार भागों में स्थापित करेगा जिनके दर्शन मैं भी कर सकूँगा। शबर ने कहा - हे विद्यापति! तुम भाग्यशाली हो, राजा से पहले तुम, भाग्यशाली हो, राजा से पहले तुम, नीलमाधव को देखोगे। फिर शबर उस अतिथि विद्यापति को पर्वत पर चढ़ाकर ले गया जहाँ रोहिण कुंड था। उसने कहा कि जो इस कुंड के पानी से स्नान करेगा, वह वैकुण्ठवासी होगा। आगे उसने एक कल्पवृक्ष को दिखाया जिसकी छाया में ठहरने से मानव ब्रह्महत्या के पाप से विमुक्त हो जाएगा। उसने उस कुंड और कल्पवृक्ष के बीच में स्थित भगवान् जगन्नाथ को दिखाया जिसके दर्शन से सभी पापों का नाश हो जाता है। विद्यापति ने स्नान किया और दूर से ही भगवान् जगन्नाथ को प्रणाम कर स्तुति करने लगा - 'हे सर्वात्मा! अंतर्यामी! परात्पर! सर्वव्यापी! जगत्पति! पावनमूर्ति! आपको मेरे साष्टांग दंड प्रणाम। हे सर्वकल्मषरहित! निर्मलातरंग! शुभरूप! माया-स्वरूप! सर्वजीव स्वरूप! आप सर्वसाक्षी हैं। आप ही अनेक

च रण, अनेक चक्षु अनेक सिर और अनेक बाहुवाले हैं। आपको मेरे प्रणाम। हे कमलाकांत! हे कमलासन! हे पद्मपत्राक्ष! हे पुरुषोत्तम! मेरी रक्षा कीजिये।" इस प्रकार स्तुति करते हुए विद्यापति ने हरि के सन्निध प्रणव मंत्र का जप करने लगा। विश्वासु ने उस ब्राह्मण की प्रशंसा करते हुए कहा कि तुम भूख और प्यास के कारण कमजोर हो गये हो। इसके अलावा शाम भी हो गयी है और रात में इस अरण्य में, जंगली जानवरों के बीच में रहना उचित नहीं। ऐसे कहते हुए शबर उस ब्राह्मण को अपने घर लेगया और अत्यंत उच्चस्तरीय भक्ष्य भोजों से उसका सत्कार कर संतुष्ट किया।

इन वस्तुओं के यकायक इंतजाम से विद्यापति ने विस्मित होकर शबर से पूछा कि इतनी दिव्य वस्तुओं का जुगाड़ किस प्रकार हुआ। मैं इसे सुनने का इच्छुक हूँ। तब शबर ने उसकी जिज्ञासा देखकर कहा कि यह परमगोपनीय है, फिर भी मैं तुम्हें बताता हूँ। यहाँ प्रतिदिन इन्द्रादि देव गण दिव्योपचार चीजें जगन्नाथ की पूजा के लिए लाते हैं और उनकी स्तुति तथा प्रणाम कर, गीत, नृत्य आदि कर देवलोक वापस जाते हैं। मैं ने जो तुम्हें खिलाया है वे सब भगवान् को नैवेद्य चढ़ा चुके हैं और उनके उच्छिष्ठ को जो खायेगा वह और उसका परिवार पाप, रोग, जरा आदि से मुक्त होगा। शबर की ये बातें सुनकर विद्यापति ने सोचा कि अहो! यह शबर होने से क्या, यह अत्यन्त भाग्यशाली है। वह भगवान् के दिव्य भोगों को नित्य खाने के कारण इसके समान इस पृथ्वी पर और कोई नहीं है। फिर उसने कहा कि - हे विश्वासु! मुझे अपने घर जाने से क्या लाभ? मैं तुमसे मित्रता कर यहीं रह जाऊँगा। राजा की सेवा से तो पारलौकिक

सुख नहीं मिलेगा। मैं यहीं रहकर मधुसूदन की उपासना करते हुए देह बंधन से मुक्त होने का प्रयत्न करूँगा। मेरे पुण्य के ही कारण तुम्हारा सत्संग प्राप्त हुआ। तुम्हारे दिये प्रसाद को खाकर मैं इस दुस्तर भवसागर को पार कर सकूँगा। तुम्हारी मैत्री से मैं उस शंखचक्रगदाधारी को देख सकूँगा। इंद्रदयुम्न नरेश शीघ्र यहाँ भगवान की पूजा करने एवं विशाल प्रासाद का निर्माण करने आएँगे।

शबर विश्वासु ने विद्यापति से कहा कि इंद्रदयुम्न के आगमन के बारे में यहाँ सबको बहुत पहले से मालूम हो गया है। तुम्हारे ही कारण अन्य लोगों को भी हरि के दर्शन होंगे। तुम राजा को इस विषय के बारे में मत बताओ। फिर शबर ने उसे सोने के लिए कहा ताकि सबेरे उठकर भगवान् के दर्शन कर, समुद्र में स्नान कर इंद्रदयुम्न के निवास के लिए उचित एवं योग्य स्थान देख सकें। इस प्रकार दोनों ने आपस में अन्य पौराणिक कथाओं की चर्चा करते हुए बहुत समय बिताया और फिर सो गये। विद्यापति ने उठकर माधव को प्रणाम कर, समुद्र में स्नान किया। राजा के ठहरने के लिए योग्य स्थान ढूँढकर फिर विश्वासु से बिदा ली। फिर राजा इंद्रदयुम्न के आज्ञानुसार रथ पर बैठकर अवंतीपुर के लिए रवाना हुआ।

## भाग - 9

विद्यापति ने स्वर्ण मूर्तियों को बनवाकर वहाँ रखा जहाँ देवगण भगवान् की पूजा के लिए आये। वे श्री विष्णु की मूर्ति को वहाँ न पाने से व्याकुल होने लगे। द्विजों ने ध्यान मग्न होकर देखा तो उन्हें स्वर्ण मूर्ति दिखाई दी लेकिन

माधव नहीं दिखाई दिये। उसी प्रकार रोहिण कुंड को भी न देख पाकर वे व्याकुल होने लगे। वे उनके दर्शन के लिए तरह - तरह सोचने लगे। वे सुरलोक वापस नहीं जाना चाहते थे। वे भगवान् की कृपा दृष्टि के लिए तड़प रहे थे तो उन्हें आकशवाणी सुनाई दी। "चाहे जितनाभी यत्न करें पर आप लोगों का भगवान् यहाँ नहीं दिखाई देंगे। आप सब स्वयंभू के पास जाकर यथार्थ विषय बताइये।" इसे सुन सभी देवता ब्रह्मदेव के पास गये। जब उन्होंने ब्रह्मदेव द्वारा सुना कि हरि काष्ट मूर्ति के रूप में अवतारित होंगे, तब वे हार्षित होकर अपने धाम लौट गये।

रथारूढ़ी विद्यापति ने नीलमाधव को देखा तो उसने सोचा कि उसके कार्य को सिद्धि हो गई है। शबर द्वारा विद्यापति ने सुना कि इस क्षेत्र की परिक्रमा करने से भू परिक्रमा से प्राप्त पुण्य फल से भी सौ गुना फल अधिक होगा। तब विद्यापति ने समूचो पुरूषोत्तम क्षेत्र को देखना चाहा। उस वन में विविध पक्षियों का गान, भौंरों का गुंजन, अनेक फलों से लदे वृक्ष, छायादार पेड़, परिमल कुसम-गुच्छ, लता, गुल्म, जलाशय, जिसमें नाना प्रकार की चिड़ियाँ आदि विद्यापति को आह्लादित कर रहे थे। उस दिव्य शोभा को देखकर, विद्यापति ने उपवास कर, हरि का ध्यान, करते हुए अवंती नगरी के राजा को उस क्षेत्र की महिमा को बताने के लिए कुतूहल से नगर में पहुँचा। उसके आने की सूचना पाकर महाराज इंद्रद्युम्न नें अत्यंत हर्ष प्रकट किया।

विद्यापति को मार्ग निर्देशक, नागरिक आदि सम्मान-पूर्वक राजा के पास ले आये जहाँ वे ब्राह्मणों एवं विद्वानों के साथ उपविष्ट थे। विद्यापति ने पुरूषोत्तम क्षेत्र के नील

माधव के निर्माल्यमाला को जब राजा के हाथ में रखा तो वे उठकर उसके पास गये। राजा ने कहा कि वह दिव्य माला भगवान के गले में रहने के कारण उसका परिमल कल्पवृक्ष कुसम की सुगंध को मात कर रहा है। मैं उस माला को प्रणाम करता हूँ। श्री पति के शरोर के सर्वांगों का अलंकृत यह माला उज्ज्वल होकर महिमान्वित हुई है। हे नीलाद्रिशिखरभूषण! आपकी जय हो, मुझ शरणागत को रक्षा करें। इस प्रकार माला को स्तुति करते हुये राजा गदगद स्वर से पुलकित होकर विद्यापति के समीप गये। विद्यापति ने कहा कि हे राजन्! भगवान आप पर अनुकम्पा करें। श्री विष्णु के दर्शन के लिए जो श्री पति की आज्ञा इस माला के रूप में आपको प्राप्त हुई। ऐसा कहकर उस ब्राह्मण ने राजा इंद्रद्युम्न का माल्यार्पण किया। गले में लटकती हुई माला को देख राजा ने सोचा कि श्रीकांत ने अपने हृदय में वास किया है और उन्होंने आनंदाश्रु के साथ हरि को स्तुति इस प्रकार की "हे विश्वरूप! दोननाथ! परात्पर! श्री जगन्नाथ! मैं आपकी शरण चाहता हूँ। इस दोन की रक्षा करें।"

राजा इन्द्रद्युम्न ने विद्यापति को पूजा कर, उसे सामने आसन पर बिठाकर दत्तचित्त होकर पुरूषोत्तम क्षेत्र की महिमा, श्री जगन्नाथ के स्वरूप एवं महिमा को सविस्तार बताने को कहा।

विद्यापति नें इंद्रद्युम्न को अपने भिल्लद्वीप के प्रवेश से लेकर समुद्र स्नान तक अपने अनुभवों को विस्तारपूर्वक व्यक्त किया। विद्यापति ने नीलाद्रि, नील माधव के दर्शन, रोहिण कुंड - स्नान, बट वृक्ष की महिमा, शभुलिंग, अष्ट

शाक्तयाँ आदि के विषयों में क्रमपूर्वक राजा को बताया तो वे संतुष्ट चित्त हुये।

इन्द्रद्युम्न नरेश ने विद्यापति से कहा कि इसके पहले मै ने यात्रियों से और अभी तुमसे पुरूषोत्तम क्षेत्र के बारे में सुना। मैं और एक बार उस क्षेत्र की विशिष्टता एवं नीलेंद्रमणि मूर्ति, विष्णु के रूप को जैसे के तैसे सुनना चाहता हूँ।

विद्यापति ने कहा कि वहाँ विष्णु की प्राचीन मूर्ति नीलेंद्रमणिमय है। उन्हें शिव, ब्रह्मादि देव गण पूजा करते हैं। भगवान के कंठ में सजायीगयी वह दिव्यमाला न सूखती है न उसका पारमल कम होता है। उनके निर्माल्य के भक्षण से भूख और प्यास नहीं लगती। इस माला के दर्शन मात्र से मुक्ति-भुक्ति प्राप्त होती है। इन क्षेत्रवासियों को जरा, रोग, शोकादि से दुख प्राप्त नहीं होता।

## भाग - 10

राजा इंद्रद्युम्न के पूछने पर विद्यापति ने कहा कि संध्या समय मुझे भगवान के दर्शन हुए। उस समय मुझे आकाशवाणी सुनाई दी कि 'विधि पूर्वक जाओ, ठीक तरह जाओ'। वहाँ देवलोक से कुछ देवता आकर सहोपचार विधि से परमेश्वर की पूजा कर अनेक प्रकार भगवान की स्तुति कर तथा उन्हें संतुष्ट कर अपने धाम चले गये। तब शबर विश्वावसु ने मुझे स्वादिष्ट भोजन खिलाया तथा मुझे यह दिव्य माला प्रदान की जो कभी सूखनेवाली नहीं है। वह माला अमूल्य एवं सुखदेनेवाली भी है।

पुरूषोत्तम क्षत्र का वर्णन करना मानवातीत है। भगवान की कृपा से और अपनी बुद्धि के अनुसार मैं ने जो देखा उसे आपको बताता हूँ। उस भगवान का रूप अपूर्व है जिसकी शिल्प नैपुण्यता अत्यंत मनोहर है।

पुरूषोत्तम क्षेत्र जो जंगल में है उसके बीच नीलाद्रि है। उसके शिखर पर कल्प वृक्ष है। सूर्यास्त के बाद उसकी छाया में किसी को नहीं रहना चाहिए। यहीं रोहिण नामक विख्यात कुंड़ है जिसका पानी पाप को हरने वाला है। वटवृक्ष के नीचे इंद्रनोल मणिमय चक्रगदाधारी भगवान प्रतिष्ठित हैं जिसका परिमाण इकासी अंगुल है और अत्यंत मनोहर दिखते हैं। उनका मुख अरविंद और नाक तिल-पुष्प जैसा है। उनके अधर, गाल, दाढी दर्शकों को आश्चर्य चकित करनेवाले हैं। उस शिलामूर्ति के सभी अवयव मनोहर हैं उनके कान मकर कुंड़लों से सुशोभित हैं। उनका कंठहार अत्यंत शोभायमान है। उस जगन्नाथ मूर्ति कें स्कंध मजबूत तथ-भुजाएँ दीर्घ है। ये मूर्ति की शोभा को बढ़ा रहे हैं। वे कौस्तुभ मणि का धारण करते हैं। उनकी मेखला रत्न जड़ित एवं किंकिणी मोतियों से जड़ी हुई है जो अति सुन्दर दिखती है। हार कंकण, केयूर, मुकुटादि से अलंकृत केशव शंख, चक्र गदा, पद्म धारण किये हुये भगवान नीलाद्रि के ऊपर निवास कर रहे हैं। उनके दर्शन करनेवाले देह बंधनों से मुक्त हो जाते हैं।

कमलपाणि विष्णु की बायीं ओर लक्ष्मी देवी है। वे दोनों लक्ष्मी नारायण जीवकोटि के लिए माता-पिता हैं। स्वामी के पीछे आदि शेष का फन छत्र सा है। श्री हरि के हाथ में शत्रुमर्दन सुदर्शन चक्र है। उनके पिछले भाग में

मुकुलित हस्तों से गरुत्मंत है। अनेक जन्मों में किये गये सत्कर्मों के फल से हो लोग उस अखिलांड कोटि ब्रह्मांडनायक पुरुषोत्तम के दर्शन को पा सकते हैं। उस वैकुण्ठपति को देखने के लिए तीर्थ स्नान, तप, दान, यज्ञ आदि करने पर भी कोई प्रयोजन नहीं। इस क्षेत्रवासी विष्णु का ध्यान मात्र से बंध रहित होकर वैकुंठवासी हो जाते हैं। नीलाद्रिनाथ का दर्शन करनेवाले सत्पुरुष दाता, सर्व यज्ञों के आचरण करनेवाले यज्व, सत्यप्रवक्ता, धर्मशील, सद्गुण संपन्न एवं अपने जन्मों को सफल बनानेवाले हो जाते हैं।

इन्द्रद्युम्न नरेश ने विद्यापति से कहा कि हे विप्र! तुम्हारे द्वारा भगवत्स्वरूप को सुनकर तथा दिव्य निर्माल्य के पाने से मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। पूर्व जन्म में किये गये मेरे सभी पाप खंडित हो गये हैं अतः अब मैं ने श्री पति के दर्शन के लिए अर्हता प्राप्त की है। मैं अपने सप्रांगों से पुरुषोत्तम क्षेत्र को जाकर, पुर तथा दुर्गों का निर्माण करूँगा। मैं मुरवैरी विष्णु को प्रीति के लिए अश्वमेध याग करूँगा, शतोपचारों से उसको पूजा करूँगा तथा नियमों के साथ व्रतोपवास रख उन्हें संतृप्त करूँगा। इस प्रकार राजा जब अपने कार्यक्रम को बताने लगा तो नारद महर्षि वहाँ पधारे। राजा शीघ्र उनके पास गया और उन्हें उत्तमासन पर बिठाया तथा उन्हें प्रणाम करते हुये कहा कि आपके आने से मैं कृतार्थ हो गया हूँ। मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए प्रस्तुत हूँ। आप कृपया मेरे घर को पावन करने का आशय बतवें।

नारद महर्षि नें कहा कि हे राजन्। तुम्हारे विशिष्ट गुण ही तुम्हें ब्रह्मलोक का निवास दिलाएँगे। तुम्हारी

पारलौकिक रूचि प्रशंसनीय है। गत जन्मों में तुम्हारे किये सत्कार्य एवं आध्यात्मिक साधन के कारण माधव पर तुम्हारी दृढ़भक्ति पनप उठी है। विष्णु भक्ति से चारों प्रकार के फल एवं तपोफल भी तुम्हें प्राप्त होगा। विष्णु भक्ति एक नौका के समान है जिसका आश्रय लेने से मानव दुखरहित हो जाता है। विष्णुभक्ति मुक्ति देगी एवं त्रिविध पापराशि को दावानल के समान दग्ध कर देगी। नारद महर्षि ने आगे कहा कि गंगा, प्रयागादि स्नान, अश्वमेध यज्ञ, तप, दान, व्रत, उपवास आदि विष्णुभक्ति से प्राप्त फल से सहस्र् अश भी बराबर नहीं होते। मैं तुम्हें भक्ति के लक्षणों के यथार्थस्वरूप के विषय में बताऊँगा जिसे अपात्र, अंधो एवं मलिन चित्तवालों को नहीं बताना चाहिए।

विष्णु भक्ति समव्यापी, विशिष्ट एवं सनातन है जो सुख और दुख के समय सम प्रयोजन सिद्ध करनेवाली, आश्रय पाने योग्य एवं आचरण करने योग्य है। वह भक्ति तामस कही जाती है जो काम और क्रोध के साथ दूसरों से लाभ तथा अन्यों का नाश करने के लिए प्रयत्न करती है। राजसी भक्ति उसे कहते हैं जो कीर्ति अर्ज़न के लिए, अपने को श्रेष्ठ समझ प्रदर्शित करने के लिए की जाती है। सात्विक भक्ति उसे कहते हैं जो हानि पहूँचाने वाले भावों को तज कर, स्थिर भक्ति के लिए साधन कर, व्यक्ति अपने धर्म को न तज कर आत्मज्ञान के लिए तत्पर होता है। अद्वैद भक्ति उसे कहते हैं जो जगन्नाथ से अभिन्न भावना से की जाती है।

सात्विक भक्ति से ब्रह्म पद, राजसिक भक्ति से इन्द्रलोक, तामसी भक्ति से भोगों का अनुभव कर भक्त पितृलोक की प्राप्ति करते हैं।

जिसमें विष्णुभक्ति नहीं है वह चाहे जितनाभी श्रौत, स्मार्त से संबंधित कार्य करे, प्रायश्चित करे, तीर्थ यात्रा, कठिन तपस्या, उत्तम कुल में जन्म तथा शिल्प शास्त्र में निपुण हो उसे शाश्वतानंद फल नहीं मिलेगा। अष्टादशविद्या में निपुण होने पर भी, धार्मिक होने पर भी विष्णु भक्ति होन किसी भी लोक में पूजनीय नहीं बन सकता। चरित्रहीन होने पर भी दृढ़ भक्तियुत एवं जितेंद्रिय होने से वह सभी लोकों में प्रशंसनीय बनेगा। जिस विद्या से जगन्नाथ के विषय में जानकारी होगी वही असली विद्या है और जो इस विद्या का आचरण करेगा वही सच्चा विष्णु भक्त कहलायेगा। सचमुच वासुदेव एवं भक्त में कोई भेद नहीं। वे दोनों एक ही हैं।

नारद महर्षि ने राजा इन्द्रद्युम्न को विष्णु भक्त के लक्षणों को यों बताया है। अन्यों के कल्याण को अपना समझनेवाला, दूसरे लोग अपना अपमान करने पर भी उसे मन में नहीं रखनेवाला भिन्नत्व का भाव न रखनेवाला, सम दृष्टि रखनेवाला, भगवान से भिन्न न सोचनेवाला, सौम्य, जितेंद्रिय, मनोवाक् कर्मो से दूसरों के द्रोह की इच्छा न रखनेवाला, सदा दयाद्रचित्त, प्रशांतचित्त हिंसा के प्रति पराङ्ग मुखवाला, सद्गुणासक्त, परकार्याचरणरत, मुदान्वित, सदाचार संपन्न, श्रेष्ठ, परोत्सव को निजी उत्सव माननेवाला दोनों के प्रति दया दिखानेवाला, सदा परहित की इच्छा रखनेवाला, विषयों, के प्रीत दिखानेवाला, पतृदेवताओं के प्रति भक्ति आदि दिखानेवाला वैष्णव भक्ति कहलायेगा। तुलसीमाला और चंदनधारी विष्णुभक्त युक्ति की अर्हता प्राप्त करता है। अहंकार शून्य, हरि की पूजा

करनेवाला हरि का प्रीतिपात्र बनता है। पराये धन को मिट्टी का ढेला समझने वाला, पर स्त्री के प्रति माँ का भाव रखने वाला, मित्र एवं शत्रु के प्रति समभावना रखनेवाला, अन्यों के गुणों के गुणों पर सद्भाव रखनेवाला, भगवद्भक्त को सदा प्रेम से देखनेवाला, सदा प्रिय वचन बोलनेवाला, सदा हरि-नाम स्मरण करनेवाला आदि विष्णु भक्त की कोटि में आते हैं। अत में नारद महर्षि ने कहा कि मैं तुम्हारे ऐश्वर्य एवं कीर्ति को न देखकर तुममें परिपूर्ण विष्णु सेवानिरत भक्ति को ही देखता हूँ।

जो विष्णुभक्त नहीं हैं उनके बारे में नारद महर्षि ने राजा इन्द्रद्युम्न से इस प्रकार कहा-जो दूसरों के शुभ कार्यों के प्रति द्वेष रखता है, मत्तस्वभाववाला, सदा व्यर्थ संभाषण करनेवाला, हरिनाम-स्मरण न करनेवाला, परनारी धन में मोह रखनेवाला, लोभी, ऐहिक सुखों की आशा रखनेवाला, सदा दुष्टों के प्रति अनुरक्त होनेवाला, अन्यों का अपमान करने वाला, दूसरों की हिंसा करनेवाला, आदि विष्णु भक्त नहीं कहलाया जाएगा। वैसे मलिनात्माओं से दूर रहना चाहिए।

# भाग - 11

राजा इन्द्रद्युम्न ने नारद से कहा–हे महर्षि ! मेरा चित्त नीलाचलवासी माधव की अर्चना के लिए व्यग्र हो रहा है। आप सिद्धि की शक्ति द्वारा सारे ब्रह्मांड का पर्यटन करते हैं। हम दोनों रथारूढ होकर नीलाचल माधव के दर्शन करेंगे जहाँ अनेक पुण्यतीर्थ हैं। आप कृपया उन तीर्थों की महिमा बताइये। नारद द्वारा राजा को शिवशक्तियों

क्षेत्र की महिमा एवं भगवान के दर्शन कराने का आश्वासन देने के बाद दोनों शयन करने चले गये।

सुबह राजा ने ढिंढोरा पिटवाया कि सभी नागरिकों को नीलाद्रि पर निवास करने के लिए आमंत्रित किया गया है। जिसके लिए जो काम निर्धारित है वह उसी काम से वहीं अपना जीवन बितायेगा। अंतःपुर की स्त्रियां, परिजन, अमात्य, रथ, गज, तुरग, पदातिदल को भी राजा के साथ जाना होगा। ब्राह्मण, व्यापारी, पण्य जीवन बितानेवाले, राष्ट्र कर्मों में निष्णात, राज मार्ग-निपुण, ज्योति शास्त्रज्ञ, नृत्यगान में निपुण, गज और तुरगों को चलाने में निपुण, दैवज्ञ, अष्टादश तथा उपांगविद्याओं में निपुण, स्वर्णकार, चाटकार, शल्यहारी, द्यूतकार, कुलट, वेश्याएँ, किसान, गो मेषों, के रक्षक, शकुंतपालक कवि, व्याघ्र-शार्दूल रक्षक, सपेरा, गोरक्ष्य शबर, म्लेच्छ आदि को नीलाचल पर स्वेच्छापूर्वक वास्तुशास्त्र के अनुसार मकान बनाकर रहना होगा। इस प्रकार इन्द्रदयुम्न नृपति ने आज्ञा देकर नारद के साथ जाने के लिए सन्नद्ध हुआ।

आगे ही वहां जाने का मुहूर्त ठहराया गया। मंगल द्रव्य एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं को पुरोहित के वचनानुसार लाया गया। राजा का अभिषेक पुण्य तीर्थों के जल से व सर्व सुगंधों के साथ हुआ और उस समय श्री सूक्त का पठन भी हुआ। राजा ने पवित्रिका धारण कर यथा विधि पितृगणों की पूजा की एवं राष्ट्र के अभ्युदय के लिए होम किया। उन्होंने नवग्रहों की पूजा भी की तथा दुष्टग्रहों की बाधाओं के निवारण के लिए, स्वास्थ्य वृद्धि के लिए दैवज्ञ के आदेशानुसार ज्योति शास्त्र व मंत्रशास्त्रों के साथ मांगल्य व

नेपथ्य विधान प्रारंभ किया। राजा ने रत्नजड़ित किरीट का धारण किया। उनके कान रत्न कुंडलों से अलंकृत थे जब कि कंठ में हार शोभा दे रहे थे। फिर राजा ने केयूरांगद मुद्रिकाएँ धारण कीं। राजा ने मुक्ताहार तथा नवरत्नों से जड़ित मलाओं का धारण किया। राजा मंगल कार्याचरण के लिए सोने के आसन पर बैठा। मिट्टी के दीयों में प्रज्वलित ज्योति, फल, दधि, गोसेचन आदि को पुरोहित ने मंत्रों से अभिमंत्रित किया। नृपोत्तम ऋकवुओं से, शांति पाठों से, याजुषों द्वारा पथि सूक्त-पठन होते समय निकलकर मार्ग पर आया। राजा ने नारद मुनि को परिक्रमा को और वेद पठन से आवृत्त होकर वे बाच द्वारा पर आये। कुछ विप्रों द्वारा मांगल्यसूक्तों का पठन एवं शुभ वचन करते समय राजा के अग्रभाग में लाजलों एवं पुष्प सादर डालते थे। शुभ्रवस्त्रालंकार से सज्जित स्त्रियाँ सादर नृप का चामरों से हवा झलती थीं। राजा ने विप्रों की पूजा की और वस्त्रालंकार मालाओं तथा सुगंधानुलेपनों से उनका सत्कार किया। मंत्री ने यथा अर्हता वेश्याओं, मागधों, दानों एव अनाथों में धन बाँटा। तब राजा ने शुभसूचक ऐरावतों को, हंसों को, कुंजरों को, श्वेत मालाओं को, फलों को, कदली कांड के तोरणों के नीचे रखे गये पूर्ण कुंभ को एवं चूत-पल्लवों को देखा। फिर राजा के कानों में शंखध्वनि, मंगल गीत, वाद्य, जयजय निनाद पड़े। उसके बाद राजा ने नृसिंहस्वामी को दंडवत प्रणाम कर, उपनिषदों से स्तुति की एवं दुर्गादेवी के चरणों को प्रणाम किया। तब पुरोहित ने भगवान की मूर्ति से माला निकालकर राजा के गले में डालकर उनकी आरती उतारी।

इन्द्रद्युम्न नृपति नारद मुनि के साथ रथ पर बैठा तो ढक्का, मृदग, भेरी, शख आदि बजाये गये। राजा के चारों ओर सामंत राजा कतारों में थे जिनके रथ उच्च ध्वजा एवं ऊँचे पताकाओं से सजाये गये थे। फिर लोगों को घोड़ों और हाथियों की पद-ध्वनि, रथघोष, वाद्य आदि सुनाई दिये। उसी समय नागरिक अपने अपने सामानों, ऊँटों, अश्वों, तथा अन्य वाहनों से निकले। वे सब एक लंबी कतार में दिखते थे। अनेक वाहनों के साथ अधिकारों द्वारा शासित लोग मार्गविरोधक होकर किले से निकले। यज्ञ करनेवाले अग्निहोत्र के साथ वाहनों पर बैठकर अपनी पतियों सहित निकले। आमात्य, भृत्य, पुरोहित, ऋत्विक्, अन्य अनुयायी, सभी संभारों को लेकर निकले। कोशाध्यक्ष, सेवक, माल बेचनेवाले तथा वणिकों द्वारा बेची जाने वाले वस्तुओं को लेकर निकले चतुरंग सेना के बीच इन्द्रद्युम्न राजा "इन्द्र" सा दीखता था। नृपने मार्ग के दोनों ओर जानेवाले लोगों, प्रांतों, वनों को देखते हुये वनांत में उत्कल प्रदेश की सीमा को विभजन करते हुये मार्ग पर स्थित मालाकृत 'चर्चिका' को देखा तो नारद की आज्ञा से उतर कर उस देवी को साष्टांग दड़वत् प्रणाम किया।

इन्द्रद्युन ने चर्चिका देवी की स्तुति इस प्रकार की-" हे परमेश्वरी! हे देवी! हे शिवस्वरूपिणी! आपको मेरे प्रणाम। मुझ पर नीलाचल निवासी भगवान के दर्शन-लाभ का अनुग्रह प्रदान करें।

राजा रथ पर आरूढ़ होकर चित्रोत्पल महानदी के तट पर पहुँचा। आह्निक कार्य से निवृत होकर मध्याह्न कार्य को करने के लिए उसने नदी में स्नान कर, शुभ देवताओं को

संतृप्त किया। बाद में पितृ देवताओं के लिए राजा ने तर्पण दिये और फिर नारद मुनि के साथ मिष्टान्न भोजन किया।

सूर्य भगवान् के पश्चिमी दिशा में पहुँचने पर राजा सायंकाल कीअर्चना विधि को पूरा कर सभा के बीच आसन हुये। वह तारिकाओं के बीच चाँद सा दिखाई देता था। कवियों ने राजा की सत्कीर्ति के बारे में कविता पाठ किया तथा गायकों ने गीतों से उनकी प्रशंसा की। फिर रूप यौवन लावण्य गर्वित वेश्चयाओं ने नृत्य प्रस्तुत किया बाद में राजा ने वैष्णवों का ताम्बूल आदि से सम्मान किया। राजा ने नारद से विष्णु चरित शुधा से अपने हृदय को निर्मल बनाने का अनुरोध किया। ठीक उसी समय उत्कल भूपति ने अंदर प्रवेश करने के लिए द्वारपाल को भेजा। नारद मुनि के आदेशानुसार उत्कल भूपति को सभा के बीच प्रविष्ट कराया गया। इन्द्रदयुम्न राजा ने उसे अपनी बगल में बिठा कर प्रेम से उनके कुशल समाचार एवं नीलाद्रिशिखर के आलय पर स्थित जगन्नाथ स्वामी के बारे में पूछा।

ओद्र देशाधिपति ने जवाब में कुशल मंगल कथन के बाद इन्द्रदसुम्न नृपति के उत्तम गुणों एवं लक्षणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

उडीसा नरेश ने कहा कि नीलाद्रि जंगलों से भरा दक्षिणी समुद्र तट पर है जहाँ जन-संचार नहीं है। आपके आने से वहाँ सभी प्रकार कल्याण होगा।

इन्द्रदयुन ने जब नारद से कहा कि मुझे भय है कि शायद इस प्रयत्न में मै विफल होऊँ। तब नारद महर्षि

ने उसे ढाढ़स बँधाते हुए कहा कि भक्तों की इच्छा कभी भी विफल नहीं हो सकती। तुम अवश्य उस कारणभूत एवं अनामय नारायण को देख सकोगे। तुम्हारे ही कारण वह परमेश्वर पृथ्वी पर अवतरित होंगे। एक विष्णु ही अपनी माया से बहुरूपों का धारण करते हैं। शिव, दुर्गा अन्य देवता विष्णु परायण होकर भक्तों की इच्छाओं को पूरा कर रहे हैं। तुम वैष्णवोत्तम और ब्रह्मपरायण हो। तुम अष्टादश विद्याओं में पारंगत हो। तुम पृथ्वी पर न्याय-पूर्वक शासन करते हो और प्रजा की सर्व प्रकार से रक्षा भी करते हो एवं ब्राह्मणों की पूजा करते हो। तुम अपने चर्मचक्षुओं से वैकुण्ठ को देख सकोगे। तुम्हारे कार्य करने के विषय में ही मुझे विधाता ने नियुक्त किया है। इस प्रकार नारद ने कहा और सोने के लिये गये।

## भाग- 12

इन्द्रद्युम्न नारद मुनि की सहायता पर हर्षित थे। सबेरे उठकर दैनिक चर्या से निवृत्त होकर जगन्नाथ की पूजा करने के बाद राजा ने महानदी को पार किया। ओड्र देशाधिपति मार्ग बनाते हुये वेगवती नदी के पास पहुँचने पर इन्द्रद्युम्न राजा ने पूर्वाह्न में एक करोड़ लिंगों की अर्चना की। उस जंगल में शंख ध्वनि व मृदंग ध्वनि सुनाई देने से उसके बारे में इन्द्रद्युम्न ने नारद से पूछा तो वे बोले कि मुरवैरी का क्षेत्र गोपनीय रखा गया है फिर भी तुम्हारे पुरोहित को भगवान दिखाई दिये। इस एकाम्रवन में गौरीपति क्षेत्र समीप है। एक बार गौरी पति डर गये थे।

गौरीपति जिन्होंने दुष्ट त्रिपुरासुर का संहार किया था उनके डर जाने का कारण बताने इन्द्रद्युम्न राजा ने आग्रह किया तो नारद मुनि ने इस प्रकार कहा–भगवान शंकर तपस्या में लीन होने पर भी मन्मथ के काम बाणों से पीड़ित होकर यौवनानुमत्त पार्वती देवी के साथ रमण किया। इसके बाद वे पत्नी सहित ससुराल के यहाँ रह गये। एक दिन पार्वतीदेवी की माँ मेना ने बेटी से कहा कि तुमने उस गुण रहित शंकर को पति के रूप में चुना लेकिन उनसे तुम्हें क्या आभूषण मिले? शादी के बाद विवाहित कन्या पिता का घर छोड़ कर पति के घर में रहती है। जमाई विष्णु के समान होता है, इसलिए मैंने धीरे से और शांति से यह तुम्हें बताया।

पार्वती देवी अपने पति की निंदा पर व्यथित होकर पति के पास गयी और सक्षेप में अपनी माँ के उद्देश्य को प्रकट किया और बोली कि और अधिक यहाँ रहना उचित नहीं। तब महादेव वृषभारूढ़ होकर पार्वती सहित मध्यदेश के लिए रवाना हुए। उन दोनों ने प्रयाग एवं अन्य तीर्थों का संदर्शन कर गंगा नदी के उत्तरी तट पर निवास करने के लिए वाराणासी पुर का निर्माण किया। विश्वकर्मा ने शिव के आज्ञानुसार अनेक प्रासाद, किले, बुर्ज, उपवन तथा तीर्थों का निर्माण किया। कई लोग यहाँ आकर बस गये। यहाँ पार्वती देवी ने अपने माँ–बाप का भी स्मरण नहीं किया। कुछ युग बीतने पर शिव ने यहाँ कोटि लिंगों का प्रतिष्ठान किया और बाद में वे कैलासगिरि चले गये। यहाँ कई राजाओं ने शासन किया।

द्वापरयुग में वाराणसी नगर पर काशीराज ने भी शासन किया जिसने घोर तपस्या कर शंकर के प्रमथ गणों के साथ विष्णु को जीतने की कामना से युद्ध के लिए ललकारा। भगवान विष्णु ने उस दुष्ट राजा का वध करने अपने सुदर्शन चक्र को भेजा।

वह चक्र उग्ररूप धारण करते हुये गया और काशीराज के सिर तथा उसकी सेना का विच्छेद कर अंत में उस पुर को भी भस्म कर दिया।

तब शिव ने भी गुस्से से लाल होकर युद्ध करने केलिए पिनाक धनुष का धारण किया। उन्होंने प्रमथ गणों के साथ प्रथम बार उस सुदर्शन चक्र को देखा।

पूर्व, विष्णु ने शिव की भक्ति पर प्रसन्न होकर उन्हें पाशुपतास्त्र दिया और कहा उनके प्रतिकूल इस अस्त्र का प्रयोग करने पर वह बेकार हो जाएगा। शिवजी को वह बात याद आयी तो वे डर गये क्योंकि पाशुपतास्त्र के विफल होने से सारी वाराणसी भस्म हो जायेगी।

जब शिव ने नारायण की स्तुति इस प्रकार की - हे परात्पर! सच्चिदानंद विभव! निरंजन! आपकी सभी शक्तियाँ गोपनीय हैं। आप शाश्वत, अणु स्वरूपवाले एवं स्थूल शरीरवाले हैं। आपको मेरे प्रणाम। करोड़ों ब्रह्म भी आपके बराबर नही हो सकते। आप परम पूजनीय हैं। हे विश्वात्मा! आपको मेरे प्रणाम। मैं तमोगुण से पैदा हुआ हुँ अतः आपको जानने की शक्ति मुझमें नहीं है। मेरे अपराध को क्षमा करें।"

विष्णु भगवान ने कहा कि - "हे शिव ! आप मेरे चक्र पर विजय नही पा सकते । बहु जन्मों में की गयीतपस्या के कारण आपको मेरी अनुकंपा से शक्ति प्राप्त हुई है । आप काशी नरेश को जिताने के लिए मुझ से युद्ध करने आये है । यदि आप इस वाराणसी नगर को चिरकाल तक सुरक्षित रखना चाहते है तो आप पार्वती सहित निर्भय पुरूषोत्तम क्षेत्र में रहें । वहाँ के एकाम्रवन में आप पत्नी सहित विहार कर सकते हैं । ब्रह्मा भी वहाँ आपका अभिषेक करेंगे । इस प्रकार नारद मुनि ने इन्द्रद्युम्न राजा को बताया ।

पुरूषोत्तम क्षेत्र मे ब्रह्मा द्वारा प्रतिष्ठित उमापति को देखने के लिए राजा इन्द्रद्युम्न नारद मुनि के साथ एकाम्रवन में प्रवेश किया । राजा ने बिंदु तीर्थ में स्नान किया एवं उसके तट पर स्थित पुरूषोत्तम क्षेत्र की पूजा की । यहाँ उसने अनेक हाथी, घोडे, धन, रत्नादि को ब्राह्मणों में बाँटा । बाद में राजा ने एथोकाग्र मन मे वृषभ वाहक का ध्यान किया शंकर भगवान प्रत्यक्ष हुये और बोले – हे इन्द्रद्युम्न ! तुम तो सर्वोत्तम वैष्णव भक्त हो, शीघ्र ही तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी, इस प्रकार शिव वचन देकर अन्तर्धान हो गये ।

कोटिलिंगेश्वर ने नारद मुनि से कहा कि हे मुनीद्र ! पूर्व बताये गये ब्रह्मा के वचनानुसार पहले अश्वमेध याग का आयोजन कराओ । उस क्षेत्र के अग्रभाग में नीलकंठ होकर वास करता हूँ । अभी हरि नीलरत्न शरीर का धारण कर अंतर्हित होकर वास करते है । वहाँ मेरे आज्ञानुसार नृसिंह क्षेत्र का निर्माण करो । उस राजा को एक हजार अश्वमेघ याग करके हरि को तृप्त करना चाहिये । बाद में उसे अखण्ड वृक्ष को दिखाओ! उस वृक्ष से विश्वकर्मा चार मूर्तियाँ

बनायेंगे। ब्रह्मा स्वयं उनकी प्रतिष्ठा करेंगे। जगन्नाथ काष्ठमय तन धारण किये हुये हैं। उनका चरित्र मुझे भी नहीं मालूम है। इस प्रकार शंकर के वचनों को सुनकर नारद मुनि ने कहा कि आपने जो बताया वह मेरे मनक में भी बनाया; आप और उनमें कोई भेद नहीं है।

पाप कर्मों का आचरण करनेवाले को भी वहां मोक्ष प्राप्त होता है। पुरूषोत्तम को महिमा अनंत है। अनेक कर्मों से भी क्षुद्र, मुक्ति को प्राप्त करता है। मवेशी तथा जंगल में जीवन बितानेवाले भी मुक्ति के पात्र बनते हैं। भरी सभा में शिशुपाल की मृत्यु होने से भी वह मुक्ति का भागी बनगया; कुब्जा जो श्री हरि को घर लेगयी, उसे भी मोक्ष प्राप्त हुई। दूर में रहनेवाले चंडाल को भगवान ने मुक्ति प्रदान किया मगर समीप में रहनेवाले श्रोत्रिय को उन्होंने मोक्ष नहीं दिया। हरि-लीलाओं का वर्णन करना वश में भी नहीं है। लाखों प्रयत्नकरने पर भी इनके चरित्र को कोई नहीं जान सकता। बलयुक्त काष्ठ स्वरूपवाले हरि की प्रतिष्ठाकर, ब्रह्मा से दीक्षा लेकर बाद में आपके पादपद्म के पास आसकूंगा। इस प्रकार नारद ने कोटिलिंगेश्वर से कहा तब वे तथास्तु कहकर शीघ्र अंतर्धान हो गये।

दूसरे दिन महाराजा ने बिल्वेश्वर एवं कपोतेश्वर को प्रतिष्ठित एवं प्रणाम कर, पूजा की। फिर नारद मुनि के साथ रथारूढ़ होकर वे नीलाचल निवास की स्तुति और ध्यान करते हुए पुरूषोत्तम क्षेत्र गये।

# भाग- 13

जैमिनी ने मुनियों से कपोतेश्वर के बारे में इस प्रकार बताया। कपातेश को पूर्व कुशस्थलो के नाम से पुकारते थे। कांटों एवं कुशों से भरपूर्ण होने के कारण तथा जल के अभाव के कारण लोग वहाँ नही रहते थ। कुछ समय के बाद वह पिशाचों का निवास-स्थल बन गया था। शिवजो ने अन्न और जल का तज कर घोर तपस्या से हरि को प्रसन्न करना चाहा। शिवजो ने नीलाचल के समीप स्थित पवित्र कुशस्थलो में केवल व यु का भक्षण करते हुये कठोर तपस्या को। महेश्वर अष्टमूर्ति होने हुए भो उन्होंने कपोत का सूक्ष्म रूप धारण किया। हरि ने उन पर प्रसन्न होकर ऐश्वर्य प्रदान किया। तब ईश्वर भो विष्णु के समान पूजा एवं सम्मान पाने लगे। कुशस्थलो बृन्दावन के समान झरने, तटाक, नदियों से शोभायमान दीखने लगा। वह तरू, लताएँ विविध ऋतुओं में प्राप्त फलो एव पुष्पो से लागो की आँखा को लुभाता था। पक्षिया का मधुर कलरव एव भ्रमरो का गुंजन कानों को सुख व आनद देता था। हिंसक पशुआ के लिए वह स्थान बढ़िया था। पशुपति, ईश्वर का शरीर कपोत सा होने के कारण वे हरि की आज्ञा से कुशस्थलो में कपोतेश्वर का रूप धारण कर पार्वती के साथ निवास करनें लगे। जा इस कपोतेश्वर की स्तुति, अर्चना तथा प्रणाम करेगा वह पापरहित हाकर विष्णु धाम को पहुँचेगा।

जमिनी ने ऋषियों को बिल्वेश्व के बारे में इस प्रकार बताया। बहुत पहले पाताललोकवासी राक्षस भूलोक का विच्छद कर लोगों का भक्षण करते हुये उपद्रव मचाने लगे।

तब देवकी के गर्भ से उत्पन्न श्री कृष्ण ने राक्षसों का संहार किया तथा वे यादवों एव पाण्डवों के साथ उस कपोत स्थली के पास आये। श्री कृष्ण ने उस सुरग को देखा जो मानवों के लिए अभेद्य था। फिर उन्होने शिव की महिमा की प्रशसाकर एक बिल्व फूल पर शंकर का आंवहान कर, उनकी पूजाकर उन्हे सतुष्ट किया। श्री कृष्ण ने बिल्वेश की स्तुति इस प्रकार की–

'हे त्रिलोकज्ञानी ! त्रिगुणातीत ! सूर्य-चांद के नेत्रवाले, अष्टात्मा, पूतात्मा, अव्ययरूपवाले एव अष्टैश्वर्यवाले, आपको मेरे प्रणाम। आपको मेरे प्रणाम। बिल्वेश की कृपा से पाताल में प्रवेश करने का बिल आसानी से प्रवेश के योग्य बन गया। श्री कृष्ण ने अपना सेना के साथ उस मार्ग से जाकर दैत्यो का सहार किया एव लोगों को दैत्यों के भय से दूर किया। श्री कृष्ण, कपोतेश स्थल के पास वापस आकर वृषभध्वज को पूजा कर उन्होने राक्षसों को पुनः न धुसने के लिए द्वार पर शिव की नियुक्ति की। श्री कृष्ण ने शिव से, पाताल से राक्षसों के आने पर रोक लगाने को कहा क्यों कि वे ही राक्षसों के नाश के लिए समर्थ हैं।

तभी से बिल्वेश भूलोक में विख्यात हुआ। जो इस बिल्वेश के दर्शन करेगा, विपत्तियों से दूर होकर सफल मनोरथ वाला होगा।" इस प्रकार जैमिनी ने मुनियों को कपोतेश्वर एव बिल्वेश्वर के बारे में बताया।

## भाग - 14

इन्द्रद्युम्न महाराज विद्यापति एवं नारद मुनि से मिलकर जब नीलकठ के समीप जाने लगे तो मार्ग मे राजा

को कुछ अपशकुन दिखाई दिये। उनकी बायीं आँख और बायी भुजा फड़कने लगी तो राजा घबड़ाकर मन में सोचने लगे कि मैं शुभ यात्रा करता हूँ, मेरा साम्राज्य सुरक्षित है फिर भी मुझसे कौन सी ऐसी भूल ,हो गयी है। राजा ने सर्वज्ञाननिधि नारद से इसका कारण पूछा।

नारद मुनि ने कहा कि जिस संध्या को पुरोहित विद्यापति ने हरि को देखा ठीक उसके दूसरे दिन हरि पाताललोक में चले गये। फिर नारद मुनि ने राजा को ढाढ़स दिलाते हुये कहा कि इसमें घबड़ाने की कोई आवश्यकता नहीं। तुम सार्वभौम हो। अशुभ दीखने के बाद शुभ अवश्य होगा। फिर भी राजा भय से बेहोश हो गया तो विद्यापति ने शीतल जल उसके मुख पर छिड़क कर चंदन का लेपन किया। उसने राजा को चामर तथा ताल पंखों से हवा की तो वह होश में आया। फिर उसने नारद मुनि को अपना दुःख इस प्रकार बताया–

"हे मुनिपुंगव ! मैंने राजा के नाते, नैमित्तिक कामों को बिाधवत किया। मैं भी मन, वाक, कर्म से गाय, ब्राह्मण आदि के प्रति कोई गलती नहीं की। पता नहीं कि किस जन्म में क्या पाप मुझ से हो गया है जिसकी वजह मुझे अपशकुन दीख रहे हैं। सचमुच, मैंने देवता, अतिथियों, भृत्यों, पितृ देवताओं, मेरे शरणार्थियों, बंधुओं आदि का कभी अपमान नहीं किया। पुरोहित विद्यापति कितना भाग्यशाली है जिसने भगवान नील माधव के दर्शन किये। मैं ने अनावश्यक रूप से श्रोत्रियों आदि का स्थान भ्रंश किया। इन सभी ने मेरे कारण अपने सुखप्रद स्थानों को व्यर्थ छोड़ दिया। हरि के दर्शन न होने से मैं जीवित नहीं रहूँगा।

हे मुनींद्र ! आप कृपया मेरे पुत्र को राजगद्दी पर बिठायें एवं उसका पट्टाभिषेक करें। सभी अन्य राजाओं को मेरे पुत्र के आदेशों का पालन करने को बतायें।"

नारद महर्षि ने इन्द्रद्युम्न नरेश को उठाकर उपशमन-वचनों से इस प्रकार समझाया - "हे राजन् ! हरि की लीलाओं को कोई भी नहीं जान सकता। तुम पंडित हो। तुम क्यों नहीं जान पा रहे हो कि सत्कर्मों पर अवरोध आने पर भी बाद में शुभ ही होगा। मैं जीवन्मुक्त होने पर भी हरि की लीलाओं को नहीं समझ पा रहा हूँ। उनकी माया की बराबरी करनेवाला अन्य कोई नहीं है। उनकी माया को जानना ब्रह्मा के वश में भी नहीं है। स्वयं ब्रह्मा ने मुझ से तुम्हारे पास जपने के लिए कहा। तुम नीलमाधव को अवश्य देखोगे। अभी प्रभु अंतर्धान हो गये हैं फिर भी चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं।

हे भूपाल ! ब्रह्मा ने कहा कि तुम शीघ्र पुरुषोत्तम क्षेत्र में जाकर उनकी प्रीति के लिए एक हजार अश्वमेध याग करो। विधाता तुझ पर अनुग्रह करके श्री हरि को श्वेतद्वीप से पुरुषोत्तम क्षेत्र को लायेंगे। काष्ठ-तन धारण करनेवाले श्री हरि को तुम अपने चर्मचक्षुओं से देख सकोगे। ब्रह्मा ने कहा कि जगन्नाथ स्वामी का अवतार तुम्हारे कारण से ही प्रसिद्ध होगा। ब्रह्मा विष्णु की प्रतिमाओं का प्रतिष्ठान करेंगे। श्री हरि चार रूपों में अवतरित होंगे। इस प्रकार कहकर नारद मुनि ने इन्द्रद्युम्न को धैर्य प्रदान किया।

फिर नारद ने कहा - "हे भूपति ! पुरुषोत्तम क्षेत्र के अग्रभाग में जो समतल प्रदेश है। वह अश्वमेध याग करने के

बाधक है। अत: ऐसी माला का निर्माण कराओ कि वह एक हजार वर्ष तक सुस्थिर रूप से रह सके। चतुर्मुख ब्रह्मा ने कहा कि तुम्हें यज्ञ–फल देने के लिए तथा विघ्न-विनाश के लिए नृसिंहमूर्ति का प्रतिष्ठान करना चाहिए। फिर पवित्र यज्ञ का प्रारंभ करना चाहिए। इस पुण्य कार्य को करने में विलम्ब नहीं होना चाहिए।"

## भाग – 15

राजा इन्द्रद्युम्न नारद महर्षि, पुरोहित, बंधु, मित्र, परिवार सहित नीलकंठ के समीप जाकर महादेव की पूजा करने के बाद उन सभी ने श्री दुर्गादेवी को प्रणाम किया। नीलाचल का मार्ग तरू एवं लताओं से भरा था। वहाँ विहंगों का कलरव तथा भौंरों का गुंजन राहियों को मनोहर लगता था। वह मार्ग दुर्गम था। वह कांटों से तथा सांपों से भरा था। वहाँ मत्त गज एवं अन्य मृग चिरकाल से विहार करते थे। इन्द्रद्युम्न नरेश उस मार्ग से जाने में विफल हुये।

राजा अनुचरों के साथ नारद मुनि द्वारा गिरि शिखर को जान सका। गिरि के निचले भाग में दिव्य सिंह-शरीरधारी नृसिंहस्वामी निवास कर रहे हैं, जिनके दर्शन से ब्रह्महत्या आदि पापों से मानव मुक्त होता है। आदि विष्णु का अवतार शुरू में भयंकर था। उनका मुख खुला, तीक्ष्ण एवंभयंकर दाँतें, पिंगल वर्ण जटा, अरूण रूप, दैत्य का वक्षस्थल चीरते हुये नख, रक्तवर्ण जिह्वा, विकटाट्टहास एवं विकृत वदन, शंखचक्रधारी, दिगंतों को भयभ्रांत करनेवाले उनके नेत्र, डगमगाते हुये उनके पादघट्टन भूपति

तथा उनके अनुचरों ने नारद मुनि की सहायता से दूर से ही उस भगवान को प्रणाम किया।

नारद मुनि के वचनों का विश्वास कर राजा इंद्रद्युम्न ने भावी कार्यक्रम को करने का संकल्प कर उनसे इस प्रकार कहा – "हे मुनींद्र ! आपकी कृपा से हम सभी ने उस उग्ररूप नृसिंह स्वामी के दर्शन किये लेकिन उनके समीप जाकर आराधना करने में हमें डर लगता है। अत. हम दूर से ही उन्हें प्रणाम करेंगे। उनके दर्शन से मेरे पाप दूर हो गये हैं। अब आप कृपया नील स्वरूप मूर्ति को दिखाइये" तब नारद मुनि ने उस भगवान् के वास को दिखाते हुये कहा– यहाँ जो कल्पांत स्थायी वटवृक्ष है लोगों के लिए मोक्षप्रद बन रहा है। इसकी छाया में रहनेवाले का पाप दूर होगा, इसके मूल में प्राण छोड़नेवाले को मुक्ति मिलेगी, उनकी पूजा तथा स्तोत्र-पाठ करनेवाले के पुण्य के बारे में बताना कठिन है। उस वृक्ष के मूल के उत्तरी दिशा में चतुर्मूर्तिधारी माधव हैं। तुम्हारे अनुग्रह के लिए भगवान यहीं उद्भूत होंगे।

नारद मुनि ने आगे कहा कि इस पुण्यस्थल को मोक्षाधिकारी मात्र ही जान पा रहे हैं। हे राजा ! हर युग में भगवान ने साधुओं पर अनुग्रह करने के लिए मत्स्य, कूर्मादि अवतारों का धारण किया था। भगवान् जिस कार्य के निमित्त अवतार लेते हैं वह पूरा होजाने पर पुनःअपने यहाँ तिरोहित हो जाते हैं। वे करुणामय जिस प्रकार वटवृक्ष के मूल में उद्भूत हुये हैं, उसी प्रकार द्वारका, कांची, पुष्करों में भी वे प्रकाशमान हो रहे हैं। नाना तीर्थों में, देशों में, पुण्यक्षेत्रों में, मंदिरों आदि में उनके अवतार हो उद्भूत हुये हैं। इसमें संदेह नहीं। फिर उन्होंने राजा को भगवान् के पवित्र स्थल को दिखाया तो राजा ने उस स्थली को प्रणाम किया।

इन्द्रद्युम्न नरेश ने जगन्नाथ की स्तुति इस प्रकार की – "हे पुण्डरीकाक्ष ! जगन्नाथ ! परमेश्वर ! मानव, के पाप कम न होकर बढते ही जा रहे हैं। आपके प्रति भक्ति भाव होने के कारण मनुजों को अवश्य मुक्ति मिलेगी। हे भगवान ! आप ही उनके कर्मों की प्ररणा दे रहे हैं। विप्र अजामील अपने वर्णाश्रम धर्मों का आचरण न करने पर भी आपके नाम स्मरण की महिमा से उसने भवबंधों से मुक्त होकर मुक्ति को प्राप्त किया है। हे आदिदेव ! मैं आपकी शरण में आया हूँ। इस दीन की रक्षा करें। आपकी मूर्ति के दर्शनार्थ मुझ पर अनुग्रह करें। राजा कृतकृत्य होकर, अश्रुपूर्ण नेत्रों से पुनः उस पुण्य स्थली की वंदना की।

सभा के बीच में इंद्रद्युम्न नरेश ने इस प्रकार आकाश-वाणी सुनी – "हे राजा ! चिंता मत करो। तुम श्री हरि को अपने चर्मचक्षुओं से यहीं देख सकोगे। तुम नारद द्वारा बताये गये ब्रह्म - वचनों का आचरण करो।"

तब राजा ने मुनींद्र से कहा कि जो आज्ञा विधाता ने दी, वही आकाशवाणी ने भी दी। आप ब्रह्मा के सुत हैं; अतः आपके वचन भगद्वचन ही हैं।

## भाग - 16

संतुष्ट चित्त राजा इन्द्रद्युम्न को देख कर नारद महर्षि ने कहा– "हे नृप ! कल्याणकारी काम करने में देवता भी मदद करेंगे; यहां तक कि ब्रह्मा भी तुम्हारी सहायता कर रहे हैं। अब हम सब नीलकंठ के समीप चलें। भगवान अंतर्निहित होने पर भी नृसिंहस्वामी जो प्रत्यक्ष स्वरूप हैं पहले मैं उनकी प्रतिष्ठा करूँगा। तुम शीघ्र जाकर

वहाँ प्रासाद का निर्माण करो। विश्वकर्मा का पुत्र मेरे स्मरण से वहाँ आकर मंदिर एवं प्रसाद का निर्माण करेगा। नीलकंठ की पश्चिमी दिशा में तुम एक हजार अश्वमेध-याग करो। मैं पाँच दिन ठहरकर अनंत ज्योति स्वरूप नृसिंह स्वामी की प्रतिष्ठा करूंगा।"

देवशिल्पी का पुत्र सुघटक नारद की आज्ञा से आया और उसने राजा से शुभप्रद श्री नृसिंह स्वामी का मंदिर का पहले निर्माण करने की सलाह दी। राजा ने सुघटक से कहा कि तुम शिल्पशास्त्र में निपुण हो और विष्णु के देवशिल्पी हो। नारद मुनि शाम तक नृसिंहस्वामी की मूर्ति लेकर आयेंगे, तब तक तुम प्राकारों एवं तोरणों से युक्त नृसिंह स्वामी के लिए सुंदर देवालय का निर्माण करो। फिर राजा ने निर्माण के लिए पत्थर आदि का प्रबन्ध और नौकरों की नियुक्ति की तो सुघटक ने चार दिन में मंदिर का निर्माण पूरा किया। राजा, परिवार के साथ तथा अन्य आवश्यक पूजा की सामग्री सहित वहाँ आकर नारद की प्रतीक्षा करने लगे।

उस समय शंख, मृदंग, मुरजादि ध्वनियों के साथ गीत, मंगलवचन तथा गज घंटा नाद सुनाई दिये। आकाश में जय-ध्वनि होने लगी। दक्षिणी दिशा से सुगंधित एवं मलयमारुत वायु बहनेलगी, भौंरों का गुंजार सुनाई देने लगा एवं पुष्प वृष्टि होने लगी। उसी समय नारद मुनि दिव्य नृसिंहस्वामी की मूर्ति लेकर आये। वह मूर्ति विविध मणियों से अलंकृत, दिव्य मालाओं से विराजित; दिव्य गंधों से सुलिप्त, सुंदर, सुमनोहर, सुशोभित एवं नयनंदाकार दृष्टिगोचर हो रही थी। सुघटक के शिल्प चातुर्य को देख कर सभी दांतों तले उंगली दबाने लगे।

इन्द्रद्युम्न भूपति ने उस नृसिंहस्वामी की मूर्ति को प्रदक्षिणा की तो नारद मुनि ने प्रतिष्ठापन के लिए एकत्रित सामग्री के साथ मंदिर में आकर सुमुहूर्त में भूदेवी, लक्ष्मीदेवी सहित रत्न-वेदिका पर नृसिंह स्वामी की मूर्ति का प्रतिष्ठापन किया। नारद, वैष्णव, ब्राह्मण. आदि ने स्मार्त मन्त्रों से नृसिंहस्वामी की स्तुति की।

राजा ने नृसिंह स्वामी की स्तुति इस प्रकार की – "हे व्योमारूढ़! व्योमस्थ! व्योमाकार! व्योमातीत! व्योमकेश! आप अगम्य हैं, मायातीत हैं एवं ज्ञान गम्य हैं, आपको मेरे प्रणाम। आप सृष्टि-स्थिति और लय हैं, आप दुख-ध्वंसक, संशयातीत, एवं ज्योतिस्वरूप हैं। आपको मेरे नमस्कार। आपकी कृपा मुझ पर सदा बनी रहने का अनुग्रह करें। हे नृसिंह स्वामी! आप अनंत चरणवाले, बहु हस्तवाले, बहु नेत्रवाले एवं बहु कर्ण वाले हैं। आपको मेरे साष्टांग दंडवत् प्रणाम। हे करूणा सिंधु! आपके चलने से पृथ्वी डँवाडोल होती है, आपकी गर्दन के बाल हिलने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, आपका विकाट्टहास मेघ गर्जन को भी मात करता है। हे विष्णुस्वरूप! हे मुरारी! आपको मेरे प्रणाम। इस अबोध की रक्षा करें। सहस्राश्वमेघ याग की पूर्ति के बाद मुझे इन चर्मचक्षुओं से आपके दिव्य निजस्वरूप देखने का अवसर प्रदान करें। उस महायाग की निर्विघ्न समाप्ति के लिए मुझे आशीर्वाद दें।

जैमिनी ने मुनियों से कहा कि जो इन्द्रद्युम्न की स्तुति का पठन करेगा वह अवश्य मुक्ति पायेगा। ब्रह्मा ने इन्द्रद्युम्न के अनुग्रह के लिए तथा सर्वलोक हित के लिए नृसिंह क्षेत्र का निर्माण किया। नारद महर्षि ने नृसिंह स्वामी की मूर्ति का प्रतिष्ठापन जेठ मास के शुक्ल पक्ष में स्वाति नक्षत्रयुत

द्वादशी तिथि में किया। जो इनके दर्शन करेगा वह सहस्राश्वमेध फल को प्राप्त करेगा। उस स्वामी को सुगंध नारियल तथा पंचामृतों से स्नान कर जपा कुसुम एवं अन्य सुगंध मालाओं से अलंकृत कर, धूप, दीप, कपूर आदि से पूजा कर, षड्रसोपेत नैवेद्य अर्पित कर, परिमलद्रव्यों से युक्त ताम्बूल को अर्पित कर मृदु, मधुर, पद, गीत, कीर्तन, वाद्य, संगीत से उनकी स्तुति कर, जय-जयकार कर, प्रदक्षिणा एवं प्रणाम कर, दान, धर्मकर एवं ब्राह्मणों का संतर्पण कर संतृप्त करनेवाला ब्रह्मलोक निवास को प्राप्त करेगा।

जो भक्त नृसिंह स्वामी के दर्शनकर स्पर्श कर, उनके चरणों पर नतमस्तक होगा, उनकी दिव्य-महिमाओं का संस्मरण करेगा एवं साष्टांग दंडवत् प्रणाम करेगा वह सर्व पापों से मुक्त होगा। उस भक्त के व्याधि, शोक, मानसिक-तनाव आदि दूर होंगे तथा उसकी सभी इच्छाएँ पूरी होंगी। इस स्वामी के समक्ष यज्ञ, दान एवं अन्य पुण्य कार्य करने पर स्वामी की कृपा से भक्त का पुण्य फल अनंत होकर अंत में वह पारलौकिक सुख को प्राप्त करेगा।

## भाग –17

मूर्ति के प्रतिष्ठापन के बाद राजा इंद्रद्युम्न ने इन्द्रादि सभी देवताओं के साथ ब्राह्मणों, ऋषियों, चतुर्वेदियों, यज्ञ-पंडितों, मीमांसाशास्त्रज्ञों, सत्कर्मियों, अष्टादशविद्या प्रवीणों, धर्मकोविदों, सदाचार संपन्नों, सत्कुल संजातों, सत्तवादियों, वैष्णवों, तीनों लोकों के राजाओं, सिद्धपुरुषों, वैश्यों शूद्रों, द्वीप-प्रभुओं आदि को आमंत्रित किया। उनके रहने के लिए दो कोस विस्तीर्ण दिव्य सभा भवन बनवाया गया। सोना,

चाँदी, रत्न, मणि, स्फटिक आदि से निर्मित भवन के दरवाजे एवं खिड़कियाँ सुमनोहर एव नयनानंदकार दीखते थे। उस भवन के समीप सुंदर उद्यानवन रंग बिरंगेफूलों से अति सुन्दर दिखता था। वहाँ के जलाशयों में प्रवेश करने के लिये संगमरमर की सीढ़ियाँ बनाई गई थीं। पानी में चक्रवाक, मराल, सारस, आदि पक्षी सुखपूर्वक विहार करते थे। प्रकृति की शोभा अति रमणीय दिखती थी।

राजा इन्द्रद्युम्न की सभा में एक शुभ दिन उनके राज सिंहासन पर आसीन होने से, ऋषि उन्नतासनों पर, सिद्ध, ब्रह्मर्षि अमूल्य कंबलों पर, देवता कांचन-पीठों पर, द्विज उचितासनों पर, और कुछ उत्तमासनों पर, सिद्ध, ब्रह्मर्षि अमूल्य कंबलों पर देवता कांचन-पीठों पर, द्विज उचितासनों पर, और कुछ उत्तमासनों पर उपविष्ट हुये। उन सब के बीच देवेंद्र को उचित सिंहासन पर बिठाया गया। फिर पुरोहित एवं महेंद्र का दिव्य-वस्त्रों से सम्मान किया गया। बाद में राजा ने शेष सभी का सम्मान किया। राजा ने देवताओं की सकलोपचारों से पूजा की और उन्होंने वैष्णवों की अर्चना की। अन्यों का सम्मान करने के लिए सचिवों को नियुक्त किया गया।

इन्द्रद्युम्न नरेश ने देवेंद्र से कहा कि मैं आपके पद को हरने के लिए याग नहीं रचता हूँ। अश्वमेध याग पूरा होने तक आप देवताओं के साथ यहीं रहें। कृपया आप मुझे समाप्ति के बाद यज्ञ पुरूष को देखने का अवसर प्रदान करें। ब्रह्मा के शासनानुसार मैं यहाँ सहस्त्रहयमेध याग करूंगा ताकि सभी यहाँ माधव के दर्शन कर सके।

इन्द्र ने राजा से कहा कि तुम्हारे इस उत्सव कार्य में

हम सब तुम्हारी मदद करेंगे। इस कार्य के विषय में हम लोगों न बहुत पहले ही सोचा था। स्वयं ब्रह्मा इस कार्य के लिए उद्युत हो रेहे हैं। हमें भगवान द्वारा पता चला कि वे यहाँ काष्ठ देह धारण करेंगे। तुम शीघ्र याग शुरू करो; तुम अवन इस पुण्य कार्य में अवश्य सफलता प्राप्त करोगे।

जैमिनी ने कहा- "हे मुनियो ! इन्द्र के कहने पर राजा इन्द्रद्युम्न ने भगवान की पूजा और पितृगणों की आराधना की। फिर होम आरंभ करने के लिए नियंत्रित विप्रों और यज्ञिकों को बुलाया गया। इष्टदेव विष्णु की प्रतिमा को रखा गया। स्वस्तिवाचन होने से निश्चित लग्न पर सामग्री तैयार की गयी तथा राजा और उनकी पत्नी ने शुभ्र वस्त्र धारण कर कार्यक्रम अरंभ किया। उसी समय सर्वांगों में शुभलक्षणयुक्त अश्व का संप्रोक्षण कर, उसे अभिमंत्रित कर दुर्गीश्वरों की अनुमति से यागाश्व को छोड़ागया।

आमंत्रित लोगों को भोजन परोसने के लिये राजा ने अपने नेत्रों से इशारा किया। देवताओं को भोजन के लिए रत्नपात्र, महीपति एवं मुनियों के लिए स्वर्ण पात्र, द्विजों के लिए प्रतिदिन नये पात्र, क्षत्रियों के लिए रजत पात्र, तथ शूद्रों के लिए कांस्य-पात्र बनवाये गये। भोजन की समाप्ति के बाद हर रोज उन जूठे बर्तनों को जूठे पत्तों के समान बाहर फेंक दिया जाता था।

यज्ञोत्सव में भाग लेनेवालों के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, एवं उनकी संतानों को मिष्टान्न को भरपेट खिलाया जाता था। इसकी देखभाल के लिये एक राजा को नियुक्त किया गया था। याग की सफलता के लिए इन्द्रद्युम्न नरेश स्वयं इन्द्रादि, सुरप्रमुख, देवर्षि आदि की परिचर्या करते थे।

भोज्य पदार्थ रोज नये तरीके से बनाये जाते थे। बनाने में परस्पर प्रतियोगिता होने के कारण पदार्थ अधिक रुचिकर होने लगे। आमंत्रित लोगों के विश्राम के लिए विविध विचित्र आसन, पलंग आदि काढ़िया इंतजाम किया गया। भोजन की समाप्ति पर भोक्ताओं को ताम्बूल दिये जाते थे। अतिथियों को प्रदत्त सम्मान अद्भुत था। राजा इन्द्रद्युम्न के वश की कार्ति के बारे में सुशिक्षित पंडितों की मौलिक रचनाएँ, मनोहर एवं विविध नृत्य, गोत, स्तुति आदि सुनने व देखने में मनोहर थे। इन से तृप्त होकर लोग वापस जाने की बात ही नही सोचते थे। उन्हें कहीं भी भूस्पर्श नहीं होता था। यहाँ अनचाहा सुख मिलता था। ऋतु संदर्शन के लिए आये लोग ऐसा विचरते मानो वे अपने गृहों में विचरते हों। यहाँ प्राप्त इष्ट वस्तुएँ एवं सुखानुभूति स्वगृहों में भी नहीं लभ्य होती। यहाँ कोई भी चीज, आसानी से एवं प्रचुरमात्रा में उपलब्ध होती। अत्यंत अधिक व्यय होने पर भी स्वर्ण वृष्टि होने के कारण फिर से पृथ्वी सर्व संपदायुक्त हो जाती। प्रजा को सर्वत्र याग "न भूतो न भविष्यति" लग रहा था।

ऋत्विकों के उच्चारण करते समय स्वरलोप या वर्णलोप किसी भी संदर्भ में नहीं होता था। दिव्य सप्त ऋषि सदस्य होकर ऋतु के साक्षी बनकर याग कर्मों का प्रचार करते थे। याज्ञवल्क्यादि मुनि ऋत्विज बने रहे। मुनि आपस में कथा-कथन करते हुये, उपनिषदों का प्रवचन करते हुये, पौराणिक कथाओं को दुहराते हुये सदस्यों को परमानंद दिलाते थे। याग के अलावा इन्द्रद्युम्न ने अन्य भोगों का भी इंतजाम किया। पाताललोकवासी नागराज भी यहाँ भोगों का अनुभव करने लगा। सभी लोगों के लिए यह याग अत्यत प्रीतकर बना।

ब्रह्मा के वचनानुसार राजा इंद्रद्युम्न ने विधिपूर्वक सहस्र अश्वमेघयाग से एक कम किया। साहस्रिक यज्ञ करते समय राजा को प्रतिदिन यज्ञ में दिव्य गति दिखाई पड़ी। राजा ने सोमपान करने के बाद सातवें दिन विष्णु का ध्यान किया। राजा ने ध्यान में श्वेतद्वीप को क्षीरसागर से घिरा देखा उस द्वीप के सुगंध पुष्पों का परिमल चारों ओर व्याप्त था। वहाँ के फलों व पल्लवों के भीतर और बाहर शंख चक्रों के चिह्न दिखाई देने लगे। मुरारी की मूर्तियाँ अरुण वर्ण से मनोहर दिखने लगी। राजा ने उस क्षीर सागर के बीच शंख चक्र गदा धारी, वनमाला विभूषित एवं दिव्याभूषणों से युक्त श्री हरि को देखा। उन्हें आदि शेष का फन विस्तीर्ण छत्र सा दिखाई दिया। विष्णु के कटि प्रदेश में मेखला, दिव्य रत्न कांति युक्त थी। राजा ने विष्णु के दक्षिणी पार्श्व में लक्ष्मी देवी को देखा। उन्होंने उनके समक्ष ब्रह्मा को मुकुलित हस्तों में देखा। राजा को सनकादि मुनींद्र भी प्रभु की स्तुति करते हुये दृष्टिगोचर हुये।

इन्द्रद्युम्न नरेश ने ध्यानावस्था में देखे श्री हरि की स्तुति इस प्रकार की- "हे जगन्नाथ! नारायण! दीनबंधु! पावक! तेजस्वरूप! दीनोद्धारक! जगद्रूप! गुणांजन! त्रिगुणातीत! कैवल्यप्रद! जगदाधार! अखिलेश्वर! वरिष्ठ! आपको मेरे प्रणाम। मुझे इस भवसागर से पार करें।" जिस प्रकार सूर्योदय से तम दूर हो जाता है उसी प्रकार आपके दिव्य दर्शन से मेरी दुःखराशि तिरोहित हो गयी। आँखें खुलने के बाद राजा ने स्वप्न का स्मरण किया। उन्होंने समझा कि हय मेध क्रतु सफल हुआ है। राजा ने सोचा कि इसका कारण श्री हरि है एवं उनकी कृपा से ही यह याग सफल हुआ। तब राजा ने अपना हर्ष प्रकट किया। यह प्रसंग राजा ने नारद मुनि से बताया।

नारद महर्षि ने कहा - हे भूपति ! अरुणोदय में देखा स्वप्न सच निकलेगा। हरि का दर्शन अवश्य सात दिवसों में होगा। अब चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं। सातवें दिन यज्ञ समाप्त होने पर भगवान यहीं प्रत्यक्ष होंगे। ब्रह्मा के वचन सच निकलेंगे। अब शीघ्र अंतिम यज्ञ को भी पूरा करो। हरि के संकल्प से ही तुमने उस स्वप्न को देखा जो अन्यों के लिए सुलभ नहीं। ऐसा स्वप्न भाग्यशाली को ही दिखाई देता है, इसमें संदेह नहीं।"

## भाग- 18

जैमिनी ने महर्षियों से कहा कि इन्द्रद्युम्न नृप का अश्वमेधयाग सोमरस से प्रवर्तित हुआ। वेद मंत्र, स्तोत्र आदि पद, स्वर एवं विन्यास के साथ तीनों लोकों को सुनाई देने लगे। विधि अनुसार अवभृथ स्नान के लिए दक्षिणी सागर के तट पर स्थित बिल्वेश्वर बंदरगाह काम में आयेगा।

उसी समय कुछ सेवकों ने राजा से कहा कि हे देवेश ! हम लोगों ने समुद्री तट के समीप एक महावृक्ष देखा है जिसके मूल को लहरें छू रहें हैं और डालियाँ समुद्र में प्रवेश कर गयी हैं। उस वृक्ष का रंग अरूण है और उस वृक्ष में सर्वत्र शंख, चक्र के चिह्न दिखाई दे रहे हैं। हमने ऐसे अद्भुत वृक्ष को पहले कभी नहीं देखा। वह वृक्ष सूर्य के समान प्रकाशित हो रहा है जिसका परिमल तट पर सर्वत्र व्याप्त हो रहा है।

इन्द्रद्युम्न भूपति ने विस्मित होकर जब नारद मुनि से उस वृक्ष के विषय में बताने को कहा तो वे बोले - हे राजन्! पहले, स्वप्न में तुम्हें जो भाग्य दिखाई दिया वह सफल होने जा रहा है। स्वप्न में तुम्हें जो विष्णु दिखाई दिये उनके

शरीर से छूटे रोमों ने (बाल) ही वृक्ष-रूप धारण किया है। यज्ञ सफल होने के लिए तुम्हें पूर्णाहुति देनी चाहिये। तुम तुरंत समुद्र तट पर अवभृथ स्नान कर, उत्तम उत्सव का आयोजन कर मंच पर यज्ञश्वर का प्रतिष्ठान करो।

फिर नारद और नृप उस दिव्य वृक्ष के समीप गये। सभी लोगों ने सोचा कि ब्रह्मा ही साक्षात्कार हुये हैं। चतर्भुजयुक्त उस महावृक्ष को देखकर राजा ने अपने श्रम को सफलीकृत हुआ समझा। राजेंन्द्र ने उस तरू को बार-बार प्रणाम किया और ब्राह्मणों द्वारा उसे शंख, मृदंग, ढक्का आदि ध्वनियों एवं गोत, वाद्यों व निनादों के साथ लिवा लाया। उस समय पुष्प वृष्टि हुई। वेश्याएँ धूप-पात्रों के साथ आयीं। कुछ रमणियाँ रत्नमालाओं से सुसज्जित होकर चामरों को हिला रही थीं। सामंत राजा उस वृक्ष के पोछे-पीछे आ रहे थे जब कि वंदी मागाध तरू रूप हरि को प्रणाम कर रहे थे। महर्षि माधव की स्तुति कर रहे थे जब कि ऋत्विक, विप्र, विद्वान, श्रोत्रिय, शूद्रादि परिचर्या कर रहे थे। उस वृक्ष को पुष्पमालाओं से सजाकर महामंच पर रखा गया। इसके बाद इंद्रद्युम्न राजा ने नारद मुनि से पूछा कि जगन्नाथ की मूर्ति को बनाने के लिए कैसा व्यक्ति होना चाहिये? नारद ने कहा कि इस विषय को "अज" भी नहीं जानते तो मैं क्या बताऊँगा ?

उसी समय आकाशवाणी सुनाई दी – जिसे मंच पर रखा गया है वहीं स्वयं अवतरित होंगे। उस मंच का आच्छादन करना चाहिए और पंद्रह दिन तक उस मंच को किसी को देखना नहीं चाहिये। यहाँ के वृद्ध शस्त्रपाणि, बढ़ई को मंच पर चढ़ाकर यत्नपूर्वक दरवाजे को बंदकर देना चाहिये। जब तक दरवाजा बंद नहीं होगा तब तक बाजे

बजते रहने चाहिये। उन बाजों के शब्द को जो सुनेगा वह अंधा, बाहरा, संतानहीन एव नरकवासी होगा। उस ढ़के मंच के अंदर किसी को भी कभी भी जाकर नहीं देखना चाहिए। वहाँ पर नियुक्त किये गये वालों को छोड़ कर अन्य यदि मंच के अंदर देखेगा तो उसे राजा को एवं राष्ट्र को महा भय उत्पन्न होगा और देखनेवाला दोनों आँखों से अंधा हो जाएगा।

जगन्नाथ की मूर्ति का निर्माण पूरा हो जाने के बाद स्वयं उद्भूत भगवान ही बालेंगे। तब राजा ने आकाशवाणी के कथनानुसार काम कराने का निश्चय किया। वह वृद्ध बढ़ई, काष्ठ से भगवान की मूर्तियों के निर्माण के लिए अपनी सहमति प्रकट कर सबके देखते हुये मंच पर जाकर अदृश्य हो गया। नारदादि ने समझा कि भगवान नारायण ही हमें वंचित करने उस रूप में यहाँ आये हैं।

## भाग- 19

जैसे-जैसे दिन बीतने लगे यज्ञ प्रदेश में दिव्य गंध परिमल, पारिजात प्रसूनों की वृष्टि होने लगी। संगीत, गीतादि सुनाई देने लगे। आकाश गगा की वृष्टि होने लगी। देवताओं तथा अन्य पुरूष एवं स्त्रियों को अलभ्य सुखानुभूति और भगवान की लीलाएं आनंद दिलाने लगीं। वहाँ आविर्भूत हुये हरि को देख द्विजों ने उपासना की। उन्हे उनमें पूर्वमाधव के चिह्न साफ दिखाई दिये। नारद के कथनानुसार भगवान चतुर्भूति होकर स्वयं अवतरित हुये। नारद के वचनानुसार अब भगवान का आविर्भाव हुआ।

जनार्दन, बलभद्र और सुदर्शन के साथ दिव्य सिंहासनस्थ

होकर, शंख चक्र गदाधारी होकर छत्र की आकृति वाले सप्त फणियों के साथ तथा किरीट और कुंडल के साथ प्रकाशित हुये।

सुन्दर वदना सुभद्रादेवी अभय हस्तों के साथ दीख रही थी। लक्ष्मी देवी ही सुभद्रा देवी बनकर आविर्भूत हुई। कृष्णवतार में वह रोहिणी गर्भ से पैदा हुई थी। बल के रूप का ध्यान करने के कारण इन्होंने बलभद्र का रूप धारण किया।

श्री कृष्ण और बलराम में नहीं लेकिन उनके व्यवहार लौकिक हैं। सुभद्रा को बलराम की बहिन कहना पौराणिक कथन मात्र है। विष्णु पुरूष रूप से तथा लक्ष्मीदेवी स्त्री रूप से सर्वत्र विद्यमान हैं।

बलराम अनंत चतुर्दश भुवनों को अपने फणाग्र से धारण करते हैं। उनकी शक्ति-स्वरूपिणी लक्ष्मी ही बहिन होकर विख्यात हुई है।

सुदर्शन चक्र हमेशा विष्णु के हाथ में अलंकृत होकर रहता है। शाखग्रस्तंभ का बीचवाला रूप चौथा रूप है। इस प्रकार विष्णु, चार मूर्तियों में अवतरित हुये हैं।

आकाशवाणी ने इन्द्रद्युम्न राजा से कहा कि इन मूर्तियों को अच्छी तरह वस्त्रों से ढ़क दो और चित्रकार से शीघ्र मूर्तियों पर उचित रंग लगाने को कहो। विष्णु को नीलाभ्र-श्यामल रंग, बलराम को शंखेंदु धवल रंग, सुदर्शन चक्र को रक्तवर्ण रंग तथा सुभद्रा को कुंकुमारूण रंग लगवाओ। विविध भंगिमाओं में उद्भूत इन काष्ठ रूपों को देखनेवाले को पाप लगेगा। गोंद से लेपन किये गये वल्कलों से आच्छादन कर मूर्तियों को गोपनीय रखना चाहिए। पहले लगाये रंगों को पोंछवाकर प्रतिवर्ष फिर से मूर्तियों को रंग लगाना चाहिए। वल्कल लेपन ही दिव्य एवं सनातन है। यदि कोई इसके

लेपन को पोछेगा तो उस राष्ट्र में अकाल पड़ेगा एवं उसका वंश नष्ट हो जाएगा। रंग लगाये बिना कोई भा मूर्तियों को न देखें।

वस्त्र, आभूषण, माला, सुंदर रंगयुक्त जगन्नाथ को जो देखेगा वह करोडों जन्मों में किये पापों से मुक्त होगा। नीलाद्रि पर स्थित कल्पवृक्ष को वायव्य दिशा में एक सौहाथ की दूरी पर प्रासाद का निर्माण करो तथा उत्तर दिशा में नृसिंहस्वामी के लिए एक हजार हाथ लंबाई के मंदिर का निर्माण करके उसका प्रतिष्ठापन करो। वहीं इस माधव का भी प्रतिष्ठापन करो।

विश्वावसु शबर और विद्यापति पुरोहित के संतान को ही भविष्य में आयोजन किये जानेवाले उत्सवों में लेपन कार्य के लिए नियुक्त करना चाहिये।

इसके बाद राजा और अन्य सभो ने रत्नसिंहासन पर स्थित राम, कृष्ण, सुभद्रा एवं वासुदेव नामक चक्र को देखा। रंग लगाने से वे सभी सुन्दर दिखने लगे। श्री कृष्ण काष्ठ देहधारी होने पर भा निर्मल तेजस्वी से प्रकाशमान हो रहे हैं। दर्शन मात्र से पाप संचय को हरनेवाले कृष्ण को देख इन्द्रद्युम्न नृप आनंद सागर में डूब गया। बलराम सर्व संताप को हरनेवाले हैं। वे ही आदिशेष हैं। वे ही हल, चक्र, मूसलधारी, वनमाली हारकुंडल केयूर किरीट मुकुट वाले हैं।

श्री कृष्ण और बलराम के बीच में सुभद्रा भद्ररूपिणी है। वही अपर लक्ष्मी है। वह सर्वपापों को हरनेवाली है। लावण्यवती, अलंकार से सुशोभित, कुकुमारूण देहवाली वह अपर लक्ष्मी है। विष्णु के वाम भाग में बालर्क सदृशी तेजोमयी सुभद्रा ही है।

यह सब देख राजा अपनी सुध-बुध खो बैठा। आनंद से विभोर होकर नयनों को गंगा बहाने लगे। यह देख नारद मुनि ने कहा-हे राजेन्द्र! अकेले तुम ही पृथ्वी पर भाग्यशाली हो। सर्वज्ञाननिधि हरि इस जगन्नाथ को देखो। इनके दर्शन के लिए कितने ही योगी नियतमानस होकर प्रयत्न कर रहे हैं। यह जनार्दन काष्ठमय देह धारण कर तुम्हें अनुग्रह प्रदान करने के लिए प्रत्यक्ष हुये हैं। तुम इन करुणासागर जगन्नाथ की सेवा करो। वे तुम्हारे सभी मनोभीष्टों को पूरा करेंगे।

## भाग - 20

राजा इन्द्रद्युम्न ने श्री जगन्नाथ की स्तुति इस प्रकार की – "हे दीनवान! आपके स्मरण मात्र से आपने मकर को मारकर करि को रक्षा की है। मैं संसार कूप में एक यंत्र के समान इधर भटक फिरता हूँ। आप ही मेरी रक्षा कर सकते हैं। मेरे लिये आपसे श्रेष्ठ बधु दूसरा नहीं। जल प्रवाह से उजाड़े गये वृक्ष के समान मेरे किये हुये पाप, दुष्टों के स्नेह का अनुबंध एव विषयों में आसक्त मेरे सभी पापों को आप दूर करें। मैं आपके पाद पद्मों का आश्रय ले रहा हूं। हे ईश! मैं इस सारहीन संसार में भटकने वाला कैसे आपको समझ सकूंगा? हे मुरारी! इस दारुण पाप-फल भोगनेवाले दीन की रक्षा करें। यदि पूर्व जन्मों में मैं आपकी उपसना करता तो मुझे इतने जन्म नहीं लेने पड़ते। मुझे बारबार अत्यत दु:ख को झलना पडता है। मै ने विभुत्व, दासत्व, पितृत्व, पुत्रत्व, प्रियत्व, मातृत्व और धनित्व भावों के साथ वध्यत्व, हिंसत्व, पतित्व तथा जायात्व भावों के साथ तिर्यकत्व, सुरत्व आदि भावों के साथ नीचोर्ध्व भावों का भी अनुभव किया। मुझ निराश्रयी को इसी भवरूपी समुद्री जाल से

बाहर निकालें। अपने कटाक्ष वीक्षणों से मुझे तट पर पहुँचावें। आप मूल भूत परमेश्वर हैं अतः इस मूर्ख की रक्षा करें। हे जगदेक वंद्य! वेदांतवेद्य! अव्यय! विश्वनाथ! मेरे संचित पापों को दूर करने के लिए मैं आपसे विनती करता हूँ। आपके पाद पंकजो में मेरा मन स्थिर रूप से रहने के लिये मुझ पर अनुग्रह करें। हे दैत्यबल का नाश करनेवाले सुदर्शन चक्रधारी! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।" इस प्रकार इस संसार सागर से रक्षा करने के लिये राजा ने भगवान जगन्नाथ के सामने साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया।

नारद महर्षि ने भी जगन्नाथ की स्तुति इस प्रकार की-

"हे सर्वलोकात्मक! सर्वलोक सुखावह सर्वलोकोपकारक! भक्तप्रिय! भक्त जनैकवत्सल! स्वमायाजालव्यवहित स्वरूप! नारायण! विश्वरूप! विश्वप्रकाश! विश्वतोमुख! विश्वतोक्षि! विश्वतःश्रवण! विश्वहस्त! आप किसी के लिए भी ज्ञानगोचर नहीं होते। आपको मेरे प्रणाम।"

इसके बाद अन्य राजा, श्रोत्रिय, वेदपराग, मुनि, द्विज, क्षत्रिय, विद्वान, वैश्य आदि ने पुराणोक्त सूक्तों से, स्तोत्रों से, कविता माधुर्य से पुंडरीकाक्ष, बलभद्र, सुभद्रा तथा सुदर्शन चक्र की स्तुति की।

फिर नारद मुनि की आज्ञा से इन्द्रद्युम्न महाराज ने उन देवता मूर्तियों की मंत्रपूर्वक पूजा की। द्वादशाक्षर मंत्रों से बलभद्र की पूजा की। इनकी पूजा करेने से ध्रुव को उत्तम स्थान प्राप्त हुआ। राजा ने पुरुष सूक्त से नारायण की, देवी सूक्त से सुभद्रा की एवं सुदर्शन चक्र की पूजा की।

इन्द्रद्युम्न राजा ने द्विज श्रेष्ठों को तुलापुरुष दान, गोदान, दक्षिणा आदि दिये। गायों के खुर घट्टनों से हुये

खर्तों में स्नान कर पितृदेवता तथा शुभदेवताओं को जो संतर्पण करेगा वह सहस्राश्वमेध का फ़ल पायेगा। इसी जलाशय को इंद्रद्युम्न के नाम से पुकारा जाता हैं। जो यहां पिंड प्रदान करेगा वह इक्कीस परिवारों का उद्धार कर ब्रह्मलोक में वास करेगा। यह जलाशय गंगानदी के समान है।

इन्द्रद्युम्न ने प्रसाद के निर्माण के लिए ज्योतिश शास्त्र-विदों के निर्णयानुसार शुभमुहूर्त, में उत्तम नक्षत्र में, ब्राह्मणोत्तमों की आराधना कर, स्वस्ति वचनों का उच्चारण कर, उस विशेष स्थान पर जगन्नाथ का नाम लेते हुये अर्घ्य दिया। वह स्थल महिमोपेत होने के लिए भूदेवी की प्रार्थना कर फिर शिल्पों की पूजा की। गीत, वाद्यों के साथ उस कार्यक्रम की समाप्ति के बाद महीपति ने दोनों को, अनाथों को वांछित वस्तुओं का दान किया। उसने सामंत राजाओं का भी सम्मान कर अपने अपने निवास को चले जाने के लिए कहा।

भगवान के देवालय और प्रसाद निर्माण के लिए अनेक देशों से पत्थर लाये गये थे। श्रमिकों, कर्मियों तथा शिल्पियों को खूब धन देकर संतुष्ट किया गया। इन्द्रद्युम्न राजा ने भरी सभा में कहा कि अष्टादश द्वीपों से, अपने बाहुबल से जीतकर लायी संपदा को जगन्नाथ स्वामी के देवालय के निर्माण हेतु पुरस्कार के रूप में दिया गया है। राजा ने सोचा कि जैत्रयात्रा में संचित धन, श्री हरि की अर्चना से, उनके अनुग्रह से एवं लक्ष्मीदेवी के अनुग्रह से प्राप्त हुआ। जगन्नाथ की अराधना से ब्रह्मा ने ब्रह्मत्व को, रूद्र ने महेश्वरत्व को एवं इन्द्र ने देवलोक का प्रभुत्व पाया। उसी तरह मैं (इन्द्रद्युम्न) भी जगन्नाथ की उपासना करूंगा। इस पुण्य क्षेत्र में जो प्रत्यक्ष शरीर धारी जगन्नाथ की पूजा करेगा वह चतुर्वर्ग फल को प्राप्त करेगा। इंद्रद्युम्न राजा ने अति

साहस से अर्जित किये गये राज्य को भी श्री हरि के कैंकर्य एवं कृपापात्र बनने के लिये अर्पित कर दिया ।

इन्द्रद्युम्न राजा ने भूलोक से आवश्यक सभी सामान मगवाकर भगवान की अर्चना की। राजा ने जगन्नाथ की नित्य पूजा के लिए द्रव्य जल का आयोजन, उन्नतोत्तम देवालय व प्रसादों का निर्माण शास्त्रविधि से मूर्तियों की बनवाना आदि को अपना कर्तव्य समझा ।

## भाग -21

ऋग्वेद में पारंगत तथ वेदांत विज्ञान शील विप्रों नें इन्द्रद्युम्न को काष्ठ मूर्ति श्री जगन्नाथ की महिमा को इस प्रकार बताया। हे राजेन्द्र! तुम्हारे ही कारण भूलाक में भगवान काष्ठ मूर्ति बनकर उद्भूत हुये। वेदान्ती को छोड अन्य कोई भी इनकी महिमा को नहीं जान सकते। विष्णु की प्रवृत्ति के बिना वेद का उद्धार नहीं होगा। यह काष्ठ मूर्त्यवतार वेद-प्रसिद्ध हुआ है। सामवेद के वेतान्तवेद्य की स्तुति से भी जगन्नाथ की प्रतिभा के बारे में जानना कठिन है। इस काष्ठ मूर्ति के दर्शन से अज्ञान दूर होकर शांति मिलती है। मनोभीष्ट सिद्धि के लिए एवं लोक कल्याण के लिए उपयोगी जगन्नाथ की पूजा प्रशस्त हुई है। भारतवासियों को मोक्ष प्रदान करने के लिए ही जनार्दन भू तल पर अवतरित हुये हैं। सभो प्रांतों में से ओद्र प्रदेश अत्युत्तम है। ओड़िसा के लोग अपने चर्मचक्षुओं से ब्रह्मस्वरूप श्री जगन्नाथ को देख पा रहे हैं ।

हे राजन् ! इस पुरूषोत्तम क्षेत्र में, वेदों में बताये गये नियमों के पालन नहीं होंगे। विप्र या चंडाल हो बिना भेद-भाव के जो कोई भी श्री जगन्नाथ स्वामी का दर्शन करेगा

वह मोक्ष का भागीदार बनेगा। नास्तिक भी जगन्नाथ के दर्शन से सहस्त्राश्वमेधयाग के फल को प्राप्त करेगा। वेद का आचरण न रखने वाले को भी यह परमेश्वर मुक्ति प्रदान करेंगे। अंत में उस द्विज ने राजा को बंधु, मित्रादि के साथ यहाँ वास करने एवं भजन करने को कहा।

नारद मुनि ने इन्द्रद्युम्न से कहा कि सृष्टि के आदि में ब्रह्मा के निःश्वास से वेदों का आविर्भाव हुआ। उनमें उपनिषद द्विजों को प्राप्त हुआ जिसे अभी-अभी मैं ब्रह्मा द्वारा जान सका। मैं अभी ब्रह्मा के पास जाकर उनकी आज्ञानुसार मेरे द्वारा किये गये कार्यकलाप एवं पुरूषोत्तम क्षेत्र में जगन्नाथ के उद्भूत होने का विषय आदि बताऊँगा।

इन्द्रद्युम्न ने नारद मुनि के साथ ब्रह्मलोक जाने का आग्रह किया तो उन्होंने कहा कि जगन्नाथ-मंदिर के प्रतिष्ठापन एवं प्रासाद-स्थापनोत्सव के विषय में मैं स्वयं, विधाता से निवेदन करूँगा। अतः आप मुझेभी अपने साथ ले चलें। तब तक मैं मंदिर के गर्भ की प्रतिष्ठा को परि समाप्त करूँगा। फिर हम दोनों जाएँगे। आप तब तक के लिए रूकें।

जैमिनी ने मुनियों से मंदिर के निर्माण के बारे में ऐसा बताया – इन्द्रद्युम्न नृपति ने पत्थर काटने वालों को, शिल्प-शास्त्र विशारदों को नियमित कर उन्हें दान से सम्मानित किया। उन पत्थरों के लिए व्यय किये गये धन का अनुमान लगाना कठिन है। उस काम के लिए सामंत राजाओं को नियामत किया गया। उस मन्दिर का निर्माण स्वर्ण जड़ित रत्नों एवं संगमरमर पत्थरों से मनोहर ढंग से हुआ जिसे देख सभी दांतों तले उंगली दबाने लगे। महीपति ने गर्भ की प्रतिष्ठा यथा विधि प्रकार की। उस दिव्य व भव्य

मंदिर के निर्माण के लिए उपयुक्त सामग्री सुरक्षित रूप से रखी गयी। भगवत्पाद सेवा में सभी श्रद्धासक्त होने के कारण मंदिर का निर्माण उन्नत शिखर पर पहुँचा। मंदिर का निर्माण इतना अद्भुत रूप से होगा ऐसा अनुमान तीनों लोकों के चक्रवर्ती भी नहीं लगा सके।

जो त्रैलोक्यवासी इन्द्रद्युम्न के क्रतु को देखने आये वे यहाँ के भोगों का अनुभव करते हुये यहीं रह गये। वहाँ का सोमयाजी सभा ब्रह्मलोक सी प्रतीत होता था। यह प्रासाद देवता को भी आकर्षित करता था। इन्द्रद्युम्न राजा ने नारद मुनि से प्रासादांत के बाद इस प्रकार कहा –

"हे मुनींद्र! सुरासुरों के लिए भी लभ्य न होनेवाला यह काम मेरे लिए सुसंपन्न हुआ। आप भगवान से चर्चा करते हैं। प्रासाद चिरकाल तक रहेगा।" इस प्रकार कह कर राजा ने नारद को साष्टांग प्रणाम किया।

नारद ने राजा को उठाकर कहा - हे भूपति! सचमुच तुम और मुझ में कोई भेद नहीं। तुम्हारे संचित पुण्य से ही जगन्नाथ स्वामी का अवतरण हुआ। इनकी पूजा करो। तुम अवश्य जीवन्मुक्त बनोगे। तीर्थ यात्रा करने वालों को, मंत्र दीक्षा लेनेवालों को, जप करनेवालों को, दाताओं को, दक्षिणा देनेवालों को, व्रतों का आचरण एवं वेदाध्ययन करनेवालों को जो फल प्राप्त नहीं हुआ वह तुम्हें सम्प्राप्त हुआ। भूलोक में तुम चिरकाल तक रहो। जगन्नाथ स्वामी के उत्सव, उपचार आराधना आदि करो। जब तुम ब्रह्मा के पास जाओगे तब वे ही तुम्हें जगन्नाथ के यात्रोत्सव के विषय में बताएँगे। वे तुम्हें वर प्रदान करेंगे। प्रासाद के प्रतिष्ठापन के समय ब्रह्मा तथा सप्तर्षियों के साथ मैं भी आऊँगा। हम दोनों मिलकर ब्रह्म-

लोक जाएंगे। तुम्हारे सिवा ब्रह्मलोक में और कोई नहीं जा सकता। इस प्रकार नारद बताकर सभा स्थल के समीप गये।

## भाग - 22

नारद महर्षि और इन्द्रद्युम्न महाराज दोनों ने श्री कृष्ण बलराम और सुभद्रा को बार-बार प्रणाम करते हुये ब्रह्मलोक में जाने के लिए श्री हरि से प्रार्थना की। राजा विष्णु भक्त होने के कारण ब्रह्माण्ड में उनके लिए अलभ्य वस्तु कोई नहीं है। वे सभी लोकों में संचार कर सकते हैं। नारद और राजा दोनों महर्लोक में सिद्धों द्वारा पूजित हुये।

इन्द्रद्युम्न अपने राज भवन की सुरक्षा को न देख प्रासाद की परिसमाप्ति के लिए ही सोचने लगे। वे डरने लगे कि अचानक कोई शत्रु उनके राज्य पर चढ़ाई कर दे तो? प्रचुर यात्रा में धन पाकर भी शिल्प अपने काम में शायद ढ़िलाई दिखायें। सामंत राजा यह सोचकर कि इंद्रद्युम्न वापस नहीं आयेंगे, उनके राज्य को हड़प लें। इस तरह सोचते हुए राजा को खिन्न देखकर नारद मुनि ने ऐसा कहा - ब्रह्मलोक में मानसिक तथा शारीरिक रोग समीप नहीं आयेंगे। तुम यहाँ आकर प्रत्यक्ष रूप से हरि को देखो, अन्य के बारे में चिंता मत करो।

तब इन्द्रद्युम्न ने कहा कि हे मुनींद्र! मैं अपने परिवार के बारे में नहीं सोचता। मुझे प्रासाद के निर्माण में रुकावट का डर लग रहा है। तब नारद मुनि ने कहा – हे राजन्! जब तक तुम यहाँ रहोगे प्रासाद के निर्माण में या उसकी स्थिति में कोई भी रुकावट नहीं डाल सकता। तुम्हारे द्वारा संकल्प किये गये भगवत्कार्य की समाप्ति के लिए चतुर्भुज ब्रह्मा

पर्यवेक्षण करेंगे। देवकार्य को निर्विघ्न करने के लिए इन्द्र उनके बीच में हैं। कोई भी राजा जगन्नाथ स्वामी के प्रासाद को भंग करने की बात नहीं सोच सकता। उसकी शंका छोड़कर सामने कोटिचन्द्र कांति से, कोटि सुधासागर सा तेजोराशि ब्रह्म-सदन को देखो।

नारद और नृपति जब ब्रह्मलोक के समीप पहुँचे दूर से ही ब्रह्मर्षि को स्पष्ट रूप से उच्चारण करते हुये वेदों के स्वर सुन भी दिये। इतिहास, पुराण, छन्द आदि भी सुनाई दिये। नारद मुनि ने राजा से कहा कि वही ब्रह्मदेव का पुर है।

नारद महर्षि ने कहा-हे राजन्! इसके ऊपर और कोई लोक नहीं है। यह उत्तम लोक "सत्" कहा जाता है। ब्रह्मलोक के ऊपर तथा ब्रह्माण्ड कपाल के नीचे वैकुंठ स्थित है। वहाँ साक्षात् योगेश्वर जनार्दन चैतन्य देहधारी विराजमान हैं। उनके दर्शन के बाद कोई भी मृत्यु के संसार मार्ग में नहीं चलेगा। ब्रह्मर्षि एवं ब्रह्मा भी मुक्ति के लिए जानर्दन की उपासना करते हैं। निर्णीत आयु की समाप्ति के बाद ब्रह्मा भी जीवन्मुक्त होकर ब्रह्मर्षियों के साथ मुक्ति पायेंगे। वेही जनार्दन लोकों का सृजन करेंगे जो मत्स्य, कूर्मादि रूप धारण कर भुवनों की रक्षा करते हैं। वे ही रौद्र रूप का धारण कर लोकों का लय करते हैं। इतने में वे ब्रह्मलोक पहुँच गये। वहाँ इन्द्र, दिक्पाल, मन्वंतरादि जनार्दन के दर्शन के लिए चिरकाल से ध्यान मग्न हैं।

द्वारपाल ने नारद मुनि तथा इंद्रद्युम्न राजा को देखा तो सविनय प्रणाम किया। उसने नारद की स्तुति इस प्रकार की – "हे मुनींद्र! आपके बिना ब्रह्मदेव की सभा शोभा नहीं देती। इस सभा में श्रेष्ठ मुनि, ब्राह्मण, ब्रह्मविद, गौतमादि ऋषि विराजमान हैं।" स्तुति के बाद द्वारपाल ने उन दोनों को सभा में जाने दिया।

# भाग- 23

नारद मुनि ने द्वारपाल "मणिकोदर" से कहा कि यह नृपति, राजर्षि, महायशस्वी, सार्वभौम एवं वैष्णवोत्तम हैं। इनका नाम इन्द्रद्युम्न है। यह राजा ब्रह्मदेव से मिलने आये हैं।

मणिकोदर ने कहा – "हे मुनींद्र! यह राजा सामान्य नहीं प्रतीत होते। आप इन्हें विधाता के सम्मुख ले जा सकते हैं। जहाँ दिक्पालक आदि बैठे हैं वहाँ ये भी बैठ सकते हैं। कृपया राजा के आगमन के बारे में आप ही सूचना दें। हमें यहाँ आवश्यक समय के लिये प्रतीक्षा करनी चाहिये।"

नारद महर्षि ने ब्रह्मा के समीप जाकर, उन्हें साष्टांग दंडवत् प्रणाम कर इन्द्रद्युम्न के आगमन की सूचना दी। विधाता ने राजा को अंदर आने की अनुमति प्रदान की। राजा हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुये धीरे-धीरे आगे गये। राजा मन में काष्ठमय हरि का स्मरण करने लगे। राजा पवित्र लक्ष्मीपति के चरित का गान करते समय, ब्रह्मा के पार्श्व में सावित्री और शारदा चामरों से उनकी सेवा करने लगीं। ब्रह्मा को वेदस्तुति भी सुनाई देने लगी।

ब्रह्मा ने इंद्रद्युम्न से वहाँ आने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा - "हे पितामह! आप अंतर्यामी हैं। मैं ने सहस्र अश्व मेघयाग किये। श्री हरि काष्ठ देह से वहाँ आविर्भूत हुये। उस पुरूषोत्तम क्षेत्र में पुरूषोत्तम के लिए प्रासाद का निर्माण शुरू किया जा रहा है। मैं नारद मुनि के साथ आपके पाद पद्म के दर्शन करने, मुझ पर आपके अनुग्रह के लिए तथा जगन्नाथ के प्रतिष्ठापन के लिए आपको आमंत्रित करने मैं यहाँ स्वयं आया हूँ। प्रतिष्ठापन होने वाले एवं करनेवाले जगन्नाथ आप ही हैं।"

इसी बीच दुर्वासा महामुनि ने ब्रह्मदेव से कहा कि आपके सभा-द्वार पर लोक पालक एवं मन्वांतराधिपतियों को द्वारपाल अंदर जाने नहीं दे रहे हैं। वे चिरकाल से वहाँ उपविष्ट हुये हैं। वे आपके दर्शन के लिए इच्छुक हैं। अतः उन्हें अंदर जाने की आप अनेमति प्रदान करें।

ब्रह्मा ने दुर्वासा से प्रवेश के लिए अनुमति दी तो वे दूर से ही प्रणाम करने लगे। उसी वक्त विधाता ने कटाक्ष से उन पर अनुग्रह किया तो वे उनका गान करने लगे।

इसके बाद ब्रह्मा ने इन्द्रद्युम्न से कहा- "हे राजन! तुम्हारा समय गान को सुनने में ही बीत गया। हे नरपति! तुम्हारा वंश विछिन्न हो गया। कितने ही क्षितिपति मर गये। अंत में काष्ठमय जगन्नाथ की मूर्ति तथा उस स्वामी के लिए निर्माण किया गया प्रासाद ही बचे हैं। मेरे सानिध्य में रहने वालों को मृत्यु या वृद्धत्व नहीं आयेगा। तुम प्रतिमा और प्रासाद को अपने अधीन कर शीघ्र वापस आओ। मुझ से पहले तुम भूलोक जाकर आवश्यक वस्तुओं को जमा करो उसके बाद मैं आऊँगा। इस प्रकार ब्रह्मा ने राजाको आज्ञा दी।"

वहाँ पर स्थित देवता ने कहा - "हे चतुरानन! हमने नीलाद्रि में अंतर्हित भगवान की उपासना की। वे इन्द्रद्युम्न द्वारा किये गये क्रतु के बीच आविर्भूत हुये। कृपया इस गोपनीय विषय को बतावें।"

ब्रह्मा ने सुरों से कहा कि वह गोपनीय विषय होने पर भी, चिरकाल से यहाँ समावेश होकर मुझ से पूछने की जिज्ञासा होने के कारण तुम्हें उस उत्तम रहस्य को बताता हूँ। हे देवतागण! पूर्वपरार्ध में, पुरुषोत्तम क्षेत्र में, नीलमणि ने तन का धारण कर नहीं छोड़ा। अभी मेरा द्वितीय परार्ध

समुपस्थित है। श्वेतवराह कल्प में स्वायंभुवमनु समृद्ध हो रहे हैं। काष्ठ मूर्ति जगन्नाथ स्वामी भुवनों के मध्य भाग में आये हुये हैं। ये प्रभु मेरे आयुः प्रमाण के साथ विराजमान हैं।

हे सुरा! वे स्वामी मेरे आत्मा हैं। मैं इनका स्वरूप हूँ। हम दोनों में कोई भेद नहीं। ये ही क्षीर सागर में, श्वेत द्वीप कल्प में योगनिद्रा में शयन करनेवाले हैं। उनके शरीर के रोम ही कल्पद्रुम हैं। वे शंखचक्र से शोभायमान दिख रहे हैं। वे काष्ठ देह धारण कर सर्वजनों के श्रेय के लिए, भक्त कोटि को मोक्ष दिलाने के लिये भूलोक में अवतरित हुये हैं। उनका शरीर प्रच्छन्न है। भूलोक में उस दिव्य मूर्ति के दर्शन मात्र से लोग क्रमपूर्वक पापरहित होकर निर्मलात्मा होकर मुक्ति के के भागी होंगे। इस प्रकार ब्रह्मा के वचनों को सुनकर सुर गण संतुष्ट होकर, भूलोक में, उन्होंने पवित्र क्षेत्र में उद्भूत भगवान का नियमनिष्ठा के साथ आराधन करने का विनिश्चय किया।

ब्रह्मदेव ने सुरों से आगे कहा कि इन्द्रद्युम्न राजा के अनुग्रह के लिए श्री हरि स्वयं उद्भूत हुए हैं। वहाँ प्रभु की प्रतिमा ही तुम लोगों से बात करने के बाद, वर प्रदान करेगी। स्वामी की प्रतिष्ठा के लिए मैं भी आऊँगा। इसके पहले तुम जाकर आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध करने में इन्द्रद्युम्न राजा की सहायता करो।

जगन्नाथ की प्रतिष्ठा के लिए उचित सामान का इंतजाम करने, इंद्रद्युम्न हर्ष से ब्रह्माज्ञा को शिरोधार्य समझकर, विधाता से अनुमति लेकर देवताओं के साथ भूलोक में आये।

# भाग- 24

पुरूषोत्तम के समीप जाकर इन्द्रद्युम्न महाराज ने, साष्टांग प्रणाम कर, उत्कंठ मानस होकर जगन्नाथ स्वामी की स्तुति इस प्रकार की - "हे वासुदेव! हे शुद्धज्ञानस्वरूप! प्रणतार्तिहर! चतुर्वर्ग फल प्रद! आपको मेरे साष्टांग दंडवत् प्रणाम।"

इसके बाद देवता ने जगन्नाथ को इस प्रकार स्तुति की 'हे सहस्रशीर्ष! सहस्राक्ष! सहस्रपाद विराट्पुरूष! आप दशांगुल से विश्वभर में व्याप्त हैं। आपकी महिमा वर्णनातीत है। आपसे छंद, यज्ञपुरूष, अश्व, गाय, मेषादि पैदा हुये। आप के मुख से ब्राह्मण, बाहों से क्षत्रिय, जांघों से वैश्य तथा पैरों से शूद्र उत्पन्न हुये। आपके मन से चंद्रमा, आँखों से सूर्य, कानों से प्राणवायु, जीभ से हव्यवाहन, नाभी से आकाश, शिर से स्वर्ग तथा चरणों से पृथिवी प्रभावित हुये। हे जगन्नाथ! आप ही यज्ञ, यज्ञांश यज्ञेश एवं परात्पर हैं। हे जगत्पति! आप ही ऊर्ध्वोधोभाग एवं तिरोभाग हैं। आप ही भोज्य और भोक्ता भी हैं। हे हृषीकेश! मुक्तिप्रदाता! पुण्डरीकाक्ष! दीनानाथ शरण्य! ईश! संरक्षक! पोषक! विष्णु! आप सभी के आश्रयदाता हैं। आप अनंत हैं। आपको हम सभी की हृदयपूर्वक वंदनाएँ। हे कमलाकांत! अंतर्यामी! सर्वतेजोनिधि! आपसे बढ़कर अन्य शक्तिमान कोई नहीं है। आपको हमारे प्रणाम।"

फिर द्विजों ने नृसिंहस्वामी की परम भक्ति के साथ अर्चना की। नीलाद्रि शिखर पर जगन्नाथ की प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक सामग्री के आयोजन के लिए पद्मनिधि के साथ देवतालोग भी आये। सुरों ने वहाँ गगनचुंबी अत्युन्नत शिखर

को देखा। वह शिखर सूर्य के गमन को रोकनेवाला विंध्यगिरि सा था। देखने में वह अति रमणीय था। मुझ पर अनुग्रह होने के कारण, हरि के लिये निवास स्थान, इस भवन की रक्षा हुई है। राजा ने उन सब से कहा कि काष्ठमय शरीर से जगन्नाथ स्वामी स्वयं वहाँ उद्भूत हुये हैं। राजा ने सबके सामने कहा कि जगन्नाथ स्वामी के लिए ही वह प्रासाद बनाया गया है।

आकाशवाणी ने इन्द्रद्युम्न राजा से सहस्त्रपाणि प्रमाण-वाला प्रासाद का निर्माण जल्दी पूरा करने के लिए कहा। जगन्नाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा के लिए पद्मयोनि, सिद्ध, महर्षि एवं देवताओं के साथ स्वयं आयेंगे।

इसके बाद पद्मयोनि ने कहा – "हे राजेन्द्र! ब्रह्मा के आज्ञानुसार मैं भी प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था करने आया हूँ। इस प्रतिष्ठा कार्यक्रम के विषयमें नारद मुनि सब कुछ जानते हैं। वे यहाँ पहले ही ब्रह्मा द्वारा भेजे गये हैं। नारद के आदेशानुसार मैं उन सामग्रियों का इंतजाम करूँगा। तब इन्द्रद्युम्न ने कहा कि मुझे उन वस्तुओं के बारे में पता नहीं है और पुरोहित के पास भी अधिक समय नहीं है। पद्मयोनि ने नारद से ही उन वस्तुओं के विषय में बताने का अनुरोध किया।

## भाग – 25

नारद मुनि ने प्रतिष्ठा से संबंधित आवश्यक वस्तुओं को लिखकर पद्मयोनि से लाने को कहा। इंद्रद्युम्न ने दर्शकों के लिए याने ब्रह्मा के लिए दिव्य सदन, ब्रह्मर्षियों के लिए निर्मल निवास, इन्द्र, सुरों, सिद्धों, मर्त्यलोकवासियों, मुनींद्रों, राजाओं, पातालवासियों, नागराजाओं, तथा त्रैलोक वासियों

के लिए आसनों सहित गृहों और एक स्वर्णमय शाला का निर्माण करने के लिए कहा और उन्होंने यह भी कहा कि विश्वकर्मा भी तुम्हारे पद्मयोनि का साथ देगा।

नारद मुनि ने इन्द्रद्युम्न से इस प्रकार कहा–"हे राजन! स्वर्ण जड़ित तीन उत्तम एवं सुदृढ़ रथों को बनाओ जो रत्न-मालाओं से सुसज्जित हों। जगन्नाथ के रथ पर गरुड़ ध्वज तथा सुभद्रा के रथ पर पद्म ध्वज एवं बलराम के रथ पर ताल ध्वज होने चाहिये। श्री हरि के लिये निर्मित रथ में षोड़शक्र बलराम के रथ में चतुर्दश चक्र एवं सुभद्रा के रथ में द्वादश चक्र होने चाहिए।

श्री जगन्नाथ के रथ का विस्तीर्ण सोलह हाथ, बलराम के रथ का विस्तीर्ण चौदह हाथ तथा सुभद्रा के रथ का विस्तर्ण बारह हाथ होना चाहिए। मूर्तियों के आसन नहीं हिलने चाहिए क्यों कि उससे जगत् का नाश होगा। जगन्नाथ के हाथ के नीचे सदा दर्पण रहना चाहिए।

नारद के वचनानुसार तीनों रथों का निर्माण किया गया। विश्वकर्मा ने एक ही दिन में साक्षात् रवि के रथ के समान रथ बनाया जिसमें अक्ष, चक्र, स्तंभ, तोरण, ध्वज तथा पताका आदि सज्जित थे। वह विशाल रथ आँखों को लुभानेवाला था। बादल के गर्जन के समान और तीव्र गति से दौड़ने के लिए एक सौ श्वेत अश्व रथ में जोड़े गये थे। शुभ लग्न में, शास्त्रानुसार नारद मुनि ने रथ को प्रतिष्ठा की।

जैमिनी महर्षि ने मुनियों से रथ की प्रतिष्ठा के बारे में इस प्रकार बताया - "रथ को ईशान्य दिशा में शोभायमान शाला, मध्य भाग में मंडप को निर्माण एवं ऊपर चतुर्हस्त चतुशास्त्राकार एवं ऊँचे मंच का निर्माण हुआ। प्रतिष्ठा के

पहले दिन रात में, उत्तरदिशा में, स्वस्ति वचनों के साथ आचार्य द्वारा अंकुरार्पण हुआ। फिर बत्तीस देवताओं को बलि भेंट को गया। सभी मंच के बीच में मण्डल तैयार किया गया जिसके ऊपर एक कलश रखा गया। उस कलश में, गंगादि का पुण्यजल, पल्लव, मृत्तिका, सुगंध द्रव्य, पंचरत्न आदि डाले गये। बाद में विष्णु का स्मरण कर पंचगव्य को उस कुंभ में रखा गया।

आचार्य ने नृसिंहस्वामी को रेशमी वस्त्र पहनाकर, गले में पल्लवयुक्त सुगंध माल्यार्पण कर, अलंकार कर उस कुंभ में मंत्र के साथ सर्वोपचारों से हरि का स्मरण करते हुये आवाहन कर पूजा की। कुंभ के वायव्य भाग में समिधा और घी से एक हजार आठ बार उन्होंने होम किया।

रथ को सुगंध चंदन जल से धोया गया। आचार्य ने रथ को धूप चढ़ाने के बाद शंख एवं मंगल ध्वनियों से नृसिंह-स्वामी के ध्वज पर, विधि प्रकर वायु को प्रतिष्ठा की। उसी प्रकार आचार्य ने गरुत्मन्त का प्रतिष्ठापन किया। कुंभ का पवित्र जल सभी लोगों पर छिड़का गया। फिर पूर्णाहुति होने के बाद आचार्य को दक्षिणा से संतुष्ट किया गया। कार्यक्रम की समाप्ति के बाद ब्राह्मणों को मिष्टान्न खिलाया गया।

बलभद्रस्वामी के रथ की प्रतिष्ठा द्वादशाक्षर मंत्रों के साथ की गयी। सुभद्रा देवी का रथ लक्ष्मीसूक्त पठनों से प्रतिष्ठित किया गया।

इस प्रकार तीनों रथों का प्रतिष्ठापन कर भक्ति के साथ जगन्नाथ को गाय, वस्त्र, धान आदि दक्षिणा में देने चाहिए।

इसके बाद वाद्य, जय-जयकार, मंगल ध्वनियाँ सुनते समय जगन्नाथ की मूर्ति का रथ पर प्रतिष्ठापनकर, चामरों से हाँककर धूप चढ़ाकर फूलों को बरसाने के बाद रथ को ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्यों को खींचना चाहिए। बाद में सभी लोगों को भोजन कराना चाहिये। आचार्य को बलिमंत्र का उच्चारण करते हुये बलि चढ़ाना चाहिये।

आचार्य, भक्त वृन्द और वैष्णवों को गायत्री मंत्र एवं विष्णुसूक्त का पठन करते हुये जगन्नाथ स्वामी के रथ को समतल भूमि पर लेजाना चाहिये।

जैमिनी महर्षि ने द्विजों को उत्पातों के बारे में इस प्रकार बताया – "रथ का दंड़ टूटने से द्विजों का भय, अक्ष के टूटने से क्षत्रियों का नाश, तुला-भंग से वैश्यों का नाश, शमि के टूटने से शूद्रों को ड़र होगा। रथ की धुरी के टूटने से अनावृष्टि, पाठ के भंग से प्रजा के ड़र तथा चक्के के टूटने से शत्रुओं का आगमन होगा। रथ के ऊपर से ध्वजा का पतन होने से वर्तमान राजा की क्षति होगी और उसकी जगह अन्य राजा बनेगा। भगवान् की मूर्ति के टूटने से राजा की मृत्यु एवं रथ के टूटने से जनपदों का नाश होगा। इस प्रकार के अशुभ होने से फिर से बलि, शांति, होम आदि करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए।

रथ के जिस भाग में दोष दिखाई देगा, उस दोष को दूर करने के लिए आचार्य श्रोत्रियों एवं ब्रह्मणों के साथ शांति पाठ करना चाहिए। राजा को आकरण नुकसान पहुँचाने वाले दुष्ट ग्रहों के प्रति ग्रहशांति करनी चाहिये।"

# भाग - 26

जैमिनी महर्षि ने कहा - "सुमुहूर्त में, अनेक भक्त श्री जगन्नाथ, बलभद्र एवं सुभद्रा की मूर्तियों को लेकर गये। विश्वकर्मा ने रत्नों के साथ शाला का निर्माण किया। सभा में उपयोग में आने वाली अनेक वस्तुओं, हविस्स समित्कुश तथा विविध भोज्य का आयोजन किया गया। विप्र मूर्तियों की प्रतिष्ठा के लिए वहाँ पधारे।

भूलोक में "गाल" नामक राजा ने प्रासाद का निर्माण कर, उसमें माधव की मूर्ति का प्रतिष्ठापन कर भक्तियुक्त पूजा करता था। लेकिन जब उसने गुप्तचरों द्वारा सुना कि इन्द्रद्युम्न महीपति देव मूर्तियों का प्रतिष्ठापन कर रहा है तो वह आग बबूला होकर सेना के साथ इन्द्रद्युम्न पर चढ़ाई करने के लिए नीलाचल गया पर वहाँ के इतजाम को देख विस्मित होकर रह गया। इन्द्रद्युम्न राजा ब्रह्मलोक से आकर, प्रासाद का निर्माण कर देवताओं के साथ प्रतिष्ठापन की आवश्यक चीजें जमा करने पद्मनिधि तथा नारद के साथ आये। राजा "गाल" ने इसे जाना तो उसके हर्ष की सीमा न रही। उसे मालूम हुआ कि ब्रह्मा भी आयेंगे। राजा ने मन में निश्चय कर लिया कि वह भी प्रतिवर्ष इसी प्रकार समारोह एवं उत्सव का आयोजन करेगा। साथ ही साथ उसने दुख भी प्रकट किया कि अब तक वह काष्ठमय ब्रह्म-स्वरूप को न जान सका। उसने इंद्रद्युम्न महीपति को प्रणाम किया। राजा "गाल" ने विश्वास किया कि वह नारायण प्रभु के दर्शन कर, उनका शरण प्राप्त कर मुक्ति को भी पायेगा।

गाल नृपति ने सोचा कि ब्रह्मलोक से आया इन्द्रद्युम्न महाराज भूलोक में नहीं वास करेंगे। वे भावी कार्यक्रम के लिए आज्ञा देकर, रूपयों का इंतजाम कर पुन ब्रह्मा के साथ चले जायेंगे। वे भगवद् संबध कार्यभार उसे (गाल राजा को) सौपेंगे।

गाल नृपति ने इन्द्रद्युम्न भूपति से कहा कि आप जीवन्मुक्त हैं अत: आप ब्रह्मलोक को जा सकते हैं। मैं आपसे युद्ध करने निकला लेकिन यहाँ तो मुझे देवता आपकी आज्ञा का पालन करते हुए दिखाई दिये। मुझ क्षमा करें और मुझ पर अनुग्रह भी करें।

इन्द्रद्युम्न ने गाल से कहा – "आप भो हरि भक्त हैं। ये पुनीत कार्य चाहे मानवों के हो या देवों के पर उनका सब राजाओं पर उत्तरदायित्व है। ब्रह्मदेव अष्टदिक्पालकों के के अंश से राजा का सृजन करते हैं। आपने भी इसी तरह का प्रतिष्ठापन किया लेकिन इस सत्कार्य में एक मन्वंतर बीत गया। यह पवित्र कार्य संपूर्ण होगा या नहीं मुझ संदेह हो रहा है। मैं ने सहायता के लिए चतुर्मुख को प्रार्थना की। प्रतिष्ठा विधि को जानेवाले उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं। चार रूपों को धारण करनेवाले जनार्दन को मैं आपके सुपुर्द करके, ब्रह्मा के साथ चला जाऊँगा। जगन्नाथ के रथोत्सव के बारे में जगन्नाथ या पितामह बतायेंगे।" इस प्रकार इंद्रद्युम्न ने राजा "गाल"को बताया तो वह आनंद विभोर होगया।

गाल भूपति ने इन्द्रद्युम्न के समीप बैठकर काम करना शुरू किया। शीघ्र दिव्य दुंदुभि, मृदग, बांसुरी, वीणा-वादन आदि की ध्वनियाँ सुनाई दीं। आकाश में ऐरावतादि को चिंघाड़ तथा जय-जय नाद सर्वत्र सुनाई दिये। पुष्प वृष्ठि

हुई। आआश गंगा से बूंदे गिरने लगीं। परिमल धूप, गंध चारों दिशाओं में फैल गयीं। प्रजापति का विमान सामने नजर आया। सभी अपलक उन्हें देखने लगे। दिक्पाल चामरों से पितामह की सेवा करने लगे। उनके दोनों ओर सूर्य और चद्र आतपत्रों को पकड़े खड़ थे।

गौतमादि ब्रह्मऋषि एवं इन्द्रद्युम्न ने ब्रह्मा की स्तुति को तो देवगण ने जयनादों से उनको स्तुति की। रंभा आदि देवकांताएँ नृत्य करने लगीं। सिद्ध, विद्याधार ने ब्रह्मा की शुश्रषा की। तपस्वियोंने जोड़कर उनकी उपासना की। सावित्री और शारदा ने विचित्र काव्य प्रबन्धों से चतुरानन की प्रशसा की।

ब्रह्मा धरता पर उतरते जब पृथ्वी के समोप आये तब नारद, इन्द्रद्युम्न, गाल आदि भक्ति के साथ साष्टांग दंड़वत प्रणाम कर, पुलकित होकर, अपने को कृतार्थ समझकर आनंद सागर में डूब गये।

## भाग – 27

जैमिनी महर्षि ने द्विजों को ब्रह्मा के आगमन की सूचना दी। ब्रह्मा के वायुयान से पधारकर सीढ़ियों द्वारा उतरते समय दुर्वासा एवं नारद मुनि ने उनके हाथों को आदर पूर्वक पकड़ा। देव ब्रह्मर्षि और इन्द्रद्युम्न भूपति सिर झुकाकर ब्रह्मा को प्रणाम तथा स्तुति करते समय विधाता उतरे। वहां अनगिनत सुर, नर, विनम्र, हाथ जोड़कर उनकी वंदना करने लगे ता विधाता ने उन सब पर अनुग्रह किया।

ब्रह्मा ने समाविष्ट पितरों, ब्रह्मर्षियों, तापसों, सिद्धों विद्याधरों, यक्षों, गंधर्वों एवं अप्सराओं को सबोधित करते हुये कहा – "हे इन्द्रद्युम्न! तुम्हारे भाग्य से हम सभी यहाँ एकत्रित हुये। फिर उन्होंने रथ के समीप जाकर, जगन्नाथ को प्रणाम कर, तीन बार उनकी प्रदक्षिणा कर, रोमांचगात्र होकर, गद्‌गद् स्वर से जगन्नाथ की स्तुति इस प्रकार की –

"हे जगन्नाथ! मैं ही आप और आप ही मैं हूँ। आपको मेये प्रणाम। पूरे विश्व में हम दोनों फैले हैं। विश्वात्मा आप में समाया हुआ है। आपको जानने की शक्ति किसी म नहीं है। आप स्वप्रकाशित हैं। हे निष्प्रपंच! निराकार! निराश्रय! स्थूल सूक्ष्म अणु महिमान्वित! गुणातीत! गुणाधार! त्रिगुणात्मक! आपको मेरे प्रणाम। आपके नाभि-कमल से उद्‌भूत मैं सदा आपकी स्तुति करता हूँ फिर भी मैं आपकी माया को नहीं जान पा रहा हूँ। हे अंतर्यामी! आपको मेरे प्रणाम। आपसे श्रेष्ठ प्रभु दूसरा नहीं है। मैं आपकी इच्छा से ही सृष्टि कार्य में व्यस्त हूँ।

हे दिव्य स्वरूप! जरा मृत्युविहीन! कालरूप! प्रपन्न मृत्युनाशक! सहजानंदस्वरूप! जगत्पिता! जगन्माता! प्रणतार्तिनाशक! कृपासागर! पररूपा अपार पारावार! परमार्थ स्वरूप! प्रणतार्ति विनाशक! हे जगन्नाथ! मेरे इस सृष्टि के भार को दूर करें।"

बाद में ब्रह्मा ने धरणीधर, हलधर, बलराम की स्तुति इस प्रकार की– "हे बलभद्र! दिवाकर आपके नेत्र, ओषधीश आपके मन, वायु आपकी साँस, अग्नि आपका मुख, पृथ्वी आपके चरण, जल आपका शरीर तथा आकाश आपका सिर हैं। आपको मेरे प्रणाम।

हे फणामणिफणाकार! क्षितिमंड़लधर ! कालाग्निरूद्र ! भक्त पापाघनाशक ! आश्रित वत्सल ! आपको मेरे प्रणाम । हे भगवान्! आप ही शेष हैं और सहस्रफणवाले हैं। सदा लोकधर्ता हैं। हे दिव्य स्वरूप ! यह जगन्नाथ आपसे भिन्न नहीं हैं । आप शय्या हैं तो वे शयिता हैं। राम ही विष्णु और कृष्ण हो बलराम हैं। आप दोनों में भेद नहीं है। मुझ पर अनुग्रह करें।"

इसके बाद ब्रह्मा ने सुभद्रा की स्तुति इस प्रकार की- "हे जयदेवी ! जगन्मात ! परमेश्वरी ! सर्वशक्तिस्वरूपिणी ! सर्वहृदयनिवासिनी ! विष्णु माया स्वरूपिणी ! चराचर मोहयंत्री ! विष्णुभावानुसारिणी ! आपको मेरे नमस्कार। आप ही लक्ष्मी देवी, गोरी, शचीदेवी एवं कात्यायनी हैं । मुझ पर अनुग्रह करें।"

हे भद्रे ! आप सुभद्रा हैं, सभी के लिए भद्रदायिनी हैं। आप भद्राभद्र स्वरूपिणी हैं; आपको मेरे प्रणाम। आपने सर्वत्र स्त्री रूप का धारण किया तो पुरूषधारी जगदीश्वर हैं। आप दोनों में भेदनहीं है। हे ईश्वरी! परमेश्वरी! सर्वज्ञानप्रद! भक्तकल्पवल्ली ! आप कृपापूर्वक मेरी रक्षा करें।

आगे ब्रह्मा ने सुदर्शन चक्र की स्तुति यों की- "हे सुदर्शन ! महाज्वाल ! कोटि सूर्य समप्रभ ! आप अज्ञान, तिमिर एवं अंधों के लिए वैकुण्ठाध्वप्रदर्शक हैं। विष्णु के अविक्रराक्रम ही सुदर्शन चक्र का रूप है। आपको मेरे प्रणाम।"

इसके बाद ब्रह्मा ने रथ पर स्थित देवता मूर्तियों की प्रदक्षिणा की। फिर नारद और इन्द्रद्युम्न के साथ प्रासाद

को देखने ब्रह्मा नील।चल पर चढ़। वहाँ उन्होंने मनोहर शाला को देखा। उस दिव्य मंदिर में, देवता, उरग, भूपति, ब्रह्मर्षि, योगी, विप्र, वैष्णव, तपस्वी आदि उपविष्ट थे।

ब्रह्मदेव को उत्तम सिंहासन पर बिठाया गया। मूर्ति-प्रतिष्ठा, होम, बलि आदि के लिए जिन देवगणों को आमंत्रित किया गया था वे सभी वहाँ उपस्थित थे। महर्षि भरद्वाज ने प्रतिष्ठापन कार्यक्रम शुरू किया। देवदेव, सुर एवं त्रैलोक्यवासी साक्षात् अव्यय, सृष्टिकर्ता प्रत्यक्ष जगन्नाथ को देख जीवन्मुक्त हुये।

भरद्वाज मुनींद्र ने जगन्नाथ को मूर्ति की, मनोहर प्रासाद की तथा अत्युन्नत ध्वजा की प्रतिष्ठा कर, उनकी प्राणप्रतिष्ठा करने हेतु ब्रह्मदेव से अपनी इच्छा प्रकट की। उन सभी के विधाता ने स्वयं स्वस्ति वचन सुनाया।

उस समय मंगलप्रद रागालापों से सुस्वरों से, कीर्तनों से गंधर्व गान करने लगे तो अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, ब्राह्मण शाकुन सूक्तों का पठन करने लगे तो शंखध्वनि, मृदंग ध्वनि के साथ वीणावादन कर्णामृत सुनाई देने लगा। जगन्नाथ की मूर्ति को पूरा वस्त्रों से ढककर प्रासाद के समीप ले गये।

उस शुभ मुहूर्त में देवता पुष्प वृष्टि करने लगे, ब्रह्मा हरि को बार - बार प्रणाम करते हुये जयजयकार की स्तुति करने लगे। नारद मुनि ने वीणावादन से उन्हें संतुष्ट किया। सूर्य और चन्द्रमा उनके सिर पर दो रत्नमय छत्रों को धारण कर खड़े रहे। स्वामी के दोनों ओर भक्त चामरों से झुला रहे थे।

प्रासाद के मंडप में अभिषेक के लिए उन चारों देव-मूर्तियों को रखा गया। पितामह ने चारों प्रतिमाओं का रत्न

कुंभों के पूण्य नदियों के जल से पुरुष सूक्त का पठन करते हुये अभिषेक किया। ब्रह्मा ने उन दिव्य मूर्तियों की आरती उतार कर उन्हें मंत्रोच्चारण से रत्न सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया।

इसके बाद ब्रह्मा ने इस प्रकार स्तुति की – 'हे नाथ! हे जगन्नाथ! इस प्रासाद में आप सुस्थिर होकर रहें। आपकी आज्ञा से, एवं आपकी कृपा से यह प्रतिष्ठा-कार्यक्रम समाप्त हुआ।

फिर जैमिनी ने द्विजों से उन मूर्तियों के दर्शन से प्राप्त फल के बारे में ऐसा बताया — हे द्विजो! ब्रह्मा ने प्रतिष्ठा के बाद उनके चरण-छूकर अनुष्टुप छंद में मंत्र राज का एक हजार बार जाप किया। वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में गुरुवार के दिन उन देवता मूर्तियों का प्रतिष्ठापन हुआ; अतः वह दिन सर्वपापहारी है। उस दिन का स्नान, दान, तप होम सभी अक्षय होंगे। जो उस दिन उन मूर्तियों के दर्शन करेगा, मुक्ति का भागी होगा। उस प्रतिष्ठापन के दिन जो भक्त जगन्नाथ की अर्चन करेगा, वह करोड़ों जन्मों में किये गये पापों से मुक्त होगा, इसमें संदेह नहीं।

## भाग- 28

जैमिनी महर्षि ने विप्रों से नृसिंह स्वामी के आविर्भाव के बारे में इस प्रकार बताया – "हे विप्रो! मंत्र की महिमा से इंद्रद्युम्न महाराज ने नृसिंह स्वामी को देखा। लेकिन उनकी

मूर्ति भयंकर थी। उन्हें वे अपनी प्रज्वलित जीभ से #ह जगत् को चाटते हुये दिखाई दिया। वे राजा को कालाग्नि रुद्र सा, दिखाई दिये। नृसिंहस्वामी सभी को निगलते हुये अमित तेजस्वी बनकर दिखने लगे। वहाँ के लोग उस भयंकर मूर्ति की स्तुति नहीं कर सके।" इसे देख नारद मुनि ने अपने पिता से इसके कारण की स्पष्टता के लिए अनुरोध किया।

नारद मुनि ने ब्रह्मा से कहा "हे पितामह! लोग उस नृसिंह स्वामी को देख भयभीत होकर सोच रहे हैं कि अब प्रलय आसन्न हो गया है। आप भगवान् की लीलाओं को जानते हैं, अतः उनके बारे में बतावें।"

ब्रह्मा ने नारद मुनि से कहा कि परमेष्ठि के मंत्र पठन से जगन्नाथ स्वामी ही इस प्रकार सबको दिखाई दिये। इस महिमान्वित का पठन पूर्व ब्रह्मा ने भी किया तो उस स्वामी ने महासुर हिरण्यकश्य को चीर डाला। उस दिन इस भगवान् ने सुदर्शन का भयानक रूप धारण किया। अत्यंत तेजस्वी विष्णु की पराकाष्ट मूर्ति यही है। इस मूर्ति का अर्चन करनेवाले का पुनर्जन्म नहीं होगा। फिर ब्रह्मा ने नारद मुनि को नृसिंहस्वामी के अभिमुख स्तोत्र को बताया।

जैमिनी ने द्विजों को नृसिंहस्वामी के शांत स्वरूप के विषय में इस प्रकार बताया - "हे विप्रो! ब्रह्मा ने उस मन्त्र को लिखकर नृसिंहस्वामी की जांघ पर रखा। उस मन्त्र में चतुर्वेद प्रतिष्ठित हुये हैं। पूर्व में स्वायंभुव मुनि ने उस मंत्र की दीक्षा लेकर सृष्टि का कार्य आरम्भ किया। इस मन्त्र के प्रभाव से अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होंगी। इस मन्त्र के जाप से चतुर्विध फल प्राप्त होंगे और संचित पाप राशि दूर

हो जाएगी। यतीश्वर इस मन्त्र को जपने के कारण भवरोग-रहित हो रहे हैं। इस मन्त्र की दीक्षा लेनेवाले के पास भूत, प्रेत, पिशाच, शाकिनी, डाकिनी, सर्प, ग्रहादि समीप नहीं आ सकते। इन्द्रद्युम्न नृपति ने भी इस मन्त्र की दीक्षा लेने से नृसिंहस्वामी शान्तचित्त होकर, लक्ष्मी को वक्षस्थल पर बिठाकर उनके प्रत्यक्ष दर्शन किये। राजा ने बलभद्र को अपना सहस्त्रफणि फैलाकर छत्ता जैसा हरि के पीछे खड़ा देखा। हरि ने यज्ञांत में काष्ठ निर्मित रूप धारण किया। नृपति ने ब्रह्मा से पूछा कि क्या यह सच है? यदि सत्य है तो कृपया इसके बारे में बतावें। तब ब्रह्मा ने इन्द्रद्युम्न से इस प्रकार कहा –

"हे भूपति! तुम्हें काष्ठमय मूर्ति नहीं सोचना चाहिए। ये ही परब्रह्म हैं। चतुर्वेद की सम्मति से इन्होंने काष्ठमय मूर्ति का रूप धारण किया। ये ही सर्व जगों का सृजन करनेवाले हैं।

हलायुध बलभद्र ऋग्वेद रूपी, नृसिंहस्वामी सामवेद रूपी, सुभद्रा यजुर्वेद रूपी तथा सुदर्शन चक्र अथर्व वेद रूपी हैं। एक ही भगवान् ने अनेक रूप धारण किये हैं। इसमें संदेह नहीं। यह जगन्नाथ सर्वरूपमय और सर्व मन्त्रमय हैं। जो भक्त जिस प्रकार उनकी आराधना करेगा, उसे हरि वैसा ही फल प्रदान करेंगे। अपनी महिमा से काष्ठदेहधारी होकर भगवान यहाँ अविर्भूत हुये। वह नृसिंहस्वामी का मन्त्र सभी अभीष्टों को पूरा करने वाला है। अत. हे राजन् तुम उस सर्वश्रेष्ठ मन्त्र से विष्णु की पूजा करो।

## भाग-29

जैमिनी ने द्विजों से कहा - रथ पर आरोहित होते समय चार रूप दिखाये गये और उन्हें सिंहासन पर रखे गये।

द्वादश मंत्र के साथ बलभद्र की पूजा, नारायण की पूजा पुरुषसूक्त से, सुदर्शन चक्र की पूजा देवी सूक्त एवं द्वादशाक्षर मंत्रों के साथ जो पूजा करेगा वह भगवान् के अनुग्रह का पात्र बनेगा।

ब्रह्मा ने काष्ठदेह धारी जगन्नाथ से इस प्रकार कहा–"हे देवदेवेश! इन्द्रद्युम्न कई हजारों जन्मों से आपकी पूजा करता आ रहा है फलतः अभी आपके दर्शन हुये। यह अभी भी आपकी पूजा करना चाहता है। अतः कृपया बतावें के उसे किस भक्ति योग से आपकी आराधना, किस काल में किस व्रत के साथ विविध उपचारों से आपकी पूजा करें।"

तब जगन्नाथ की प्रतिमा ने इन्द्रद्युम्न से कहा – "हे राजन्! मैं तुम्हारे निष्काम कर्मों एव दृढ़ भक्ति से अति प्रसन्न हूँ। इस प्रकार की संपदा अन्य किसी को प्राप्त नहीं हुई। तुम्हारी भक्ति मुझ पर स्थिर रूप से रहने के लिए वर दे रहा हूँ। मैं इस प्रासाद के शिथिल होने पर भी नहीं छोड़ूँगा। तुम्हारी प्रीति के लिए मैं यहाँ सदा वास करूँगा। इस काष्ठशरीर से ही अन्यों के लिए रहूँगा। हर पूजा के समय विधि प्रकार जेठ महीने में मेरा स्नान कराना चाहिए। ऐसे करनेवाले के करोड़ों जन्मों में किये पाप दूर हो जाएँगे। बरगद के वृक्ष के उत्तर में एक कूप है। चतुर्दशी तिथि में उस कूप का संस्कार कर, बलि चढ़ाकर ब्राह्मण, स्वर्ण कुंभों से उस कूप के पानीको बाहर निकालें। जेठ महीने में ब्रह्मा के साथ मेरी, सुभद्रा और बलभद्र प्रतिमाओं का स्नान करानेवाला वैकुंठवासी होगा।

पंद्रहवें दिन में मुझे विरूप से या अभिरूप से नहीं देखना चाहिए। हे राजन्! "गुंड़िचा" नामक महायात्रा का आयोजन

करो इसके स्मरण मात्र से नर पाप से मुक्त हो रहे हैं। गुंड़िचा महोत्सव मनाने के लिये माघ मास के पंचमी तिथि तथा चैत मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि अधिक प्रशस्त हैं; विशेषकर आषाढ़ मास में पुष्यमी नक्षत्रयुक्त द्वितीया, तिथि मोक्षप्रद है। आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष मे पुष्यमीयुक्त द्वितोया तिथि के दिन मुझ, सुभद्रा, तथा बलराम सहित रथ पर बिठाकर उत्सव का आयोजन करना चाहिये। हे इन्द्रद्युम्न, मेरे अनुग्रह के लिए तुमने पांच सौ वर्ष जिस स्थान पर याग किया उस स्थल से श्रेष्ठ इस धरातल मे अन्य नहीं है।

हे नृप! वहाँ एक सर्वतीर्थमय जलाशय है जहाँ मैं सात दिन रहूँगा। त्रिभुवन में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं जो सभी मेरे सान्निध्य के कारण उस जलाशय में मिल रहेहैं। उसमें स्नान करनेवाला मातृगर्भनरक से मुक्त होगा।

हे राजा! फागुन मास में मेरे ड़ोला क्रीड़ोत्सव को मनाना होगा। झूले में दक्षिणाभिमुख से पूजित मेरे दर्शन करने वाला ब्रह्महत्यादि पापों से मुक्त होगा। पौष और फागुन महीनों मे आयोजित उत्सवों में जो एक महीना तक पूजा करेगा वह आठ हजार अश्वमेघयाग फल प्राप्त करेगा। चैत मास मे शुक्ल पक्ष त्रयोदशी तिथि में इस कार्यक्रम को समाप्त करना होगा।

इसके बाद जगन्नाथ मूर्ति ने ब्रह्मा से ऐसा कहा - "हे चतुरानन! पूर्व, आपने माधव मूर्ति से मेरी प्रार्थना की। अतः मैं ने अभी उसी अवतार से उद्भूत हुआ। तुम्हारी खुशी के लिये मैं ने सब कुछ आयोजन किया। आपकी इच्छा ही मेरी इच्छा है। जो मानव जिस उद्देश से मेरी सेवा करेगा; वह

उसे शीघ्र पा सकेगा। अंत में उस मूर्ति ने ब्रह्मा को अन्य देवता सहित अपने धाम को चले जाने के लिये कहा।

ब्रह्मा ने इंद्रद्युम्न से, जगन्नाथ से बताये गये सभी यात्रा मनाने को कहा। राजा ने जगन्नाथ की आज्ञा को अनुसरण करते हुये नारद एवं पद्मनिधि की सहायता से जेष्ठ स्नानादि उत्सवों को मनाया।

## भाग - 30

मुनियों ने जैमिनी महर्षि से जेठ महीने में स्नानादि के बारे में बताने को कहा तो उन्होंने इस प्रकार कहा – "हे मुनियो! जेठ शुक्ल दशमी के दिन सबेरे पञ्चतीर्थ विधान का अनुसरण कर व्रत का आचरण कर, संकल्प कर फिर व्रत को पूरा करना चाहिए। शंकर को प्रणाम कर, उनकी प्रार्थना करनी चाहिए। बाद में अघमर्षण सूक्त का पठन करना चाहिये। सफेद धोती पहनकर, पुंड्र धारण कर, यथाविधि देवता, ऋषियों एवं पितरों के लिये तर्पण छोड़ना चाहिए। फिर शिवालय में जाकर वृषभ को छूकर, उसको पूजाकर, शिव लिंग को छूकर और उनका विधि प्रकार अर्चना और स्तुति करना चाहिए। ऐसा करनेवाले को दशाश्वमेध-याग का फल प्राप्त होगा। जो भक्त मार्कंडयवट में स्नानकर शंकर के दर्शन करेगा उसे राजसूयाश्वमेध याग का फल प्राप्त होगा। भक्त को पुरुषोत्तम की स्तुति करते हुये दूर से ही प्रणाम करना चाहिये। इसके बाद भक्त गरुत्मंत को प्रणाम कर उसकी स्तुति करनी चाहिये। ऐसा करने से वह अनेकजन्मों में किये पापों से मुक्त होगा। फिर भक्त मन्दिर में प्रवेश कर, भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा कर अपने

अभिमतानुसार द्वादशाक्षर मंत्र से या पुरूषमूक्त विधान से जगन्नाथ की पूजा पंचोपचार विधि केसाथ करें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य सभी जगन्नाथ की पूजा के अधिकारी हैं।

भक्त को जगन्नाथ का स्तोत्र, बलभद्र का स्तोत्र एवं सुभद्रा का स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। मार्ग में स्थित उग्रसेन से समुद्र स्नान के लिए अनुमति माँगनी चाहिए। फिर भक्त को स्वर्ग-द्वार के पास जाना चाहिए। देवता गण स्वर्ग से निर्मित मार्ग से प्रतिदिन आते हैं और जगन्नाथ तथा उग्रसेन को प्रणाम करते हैं। भक्त की प्रार्थना करनी चाहिए कि वह उन दोनों के बीच खुले स्वर्गद्वार पर जाएगा। तब उसे पुण्यतीर्थ के समीप जाना चाहिए। भक्त दूर से ही उस पवित्र क्षेत्र का दर्शनकर, आसन पर बैठकर एक मंड़लाकार एवं उसके बीच एक अष्टदलपद्म को भी बनाना चाहिए।

भक्त को अष्टाक्षर मंत्र का हाथों में न्यास करना चाहिए। आस्तिक को मंत्र शास्त्र पड़ितों से बताये गये छः वर्णों से षड़ंग न्यास करना चाहिए। साधक मूल मंत्र से पच्चीस बार प्राणायामत्रय को करना चाहिए। फिर दिव्य कवच को बन्धन करना चाहिये। साधक, षोड़शोपचारों से पुरूषोत्तम को यथाविधि पूजा कर, बद्धांजलि होकर सुदर्शन मन्त्र का पठन करना चाहिए। फिर साधक, को समुद्र जल के बीच जाना चाहिए। जलाधीश के लिए अघमर्षण सूक्त को तीन बार उच्चारण करना चाहिए। वरुण मंत्र का पाँच बार पठन करना चाहिए। अंतः शुद्धि के लिए मंत्रित जल का पान करना चाहिये। बाह्य अवयव की शुद्धि के लिये कुश-जल से मार्जन करना चाहिए। बाहर और भीतरी शुद्धि

के लिये भक्त तीन अंजलि भर अभिमन्त्रित जल को सिर पर छिड़कना चाहिये। समुद्र के बीच जप नहीं करना चाहिए। भक्त को तट पर आकर आचमन कर, धवल वस्त्रों का धारण कर श्वेत पुंड्रों तथा शंख चक्र गदा पद्मतिलकों को धारण करना चाहिए।

भक्त, देवता और पितृदेवताओं को यथाविधि तर्पण छोड़ना चाहिए। बाद में भक्त, पूर्व कथनानुसार मन्डल का विरचन कर उत्तराभिमुख होकर मूल मंत्र के साथ जगन्नाथ को पूजा करनो चाहिए। उनको प्रतिमा को यथाविधि हार, केयूर, मुकुट, ग्रैवादि आभूषणों का उचित रीति से अलंकृत करना चाहिए। रेशमो उपवीत को भगवान के लिए तैयार करना चाहिए। चंदन, कस्तूरी, कुंकुम के साथ मिश्रित अनुलेप को जातो, पंकज, चंपक तथा तुलसी दलों से बनायो माला को तथा अशोक, पुन्नाग, नाग एवं केसरों के साथ एवं अन्य परिमलोपेत कुसुमों से बनायी माला को, उत्तम मोतियों को एवं विविध पुष्पों को भगवान के सिर पर अर्पण करना चाहिए। धूप, गोघृत में भिगोये दीपक का अर्पण करना चाहिए। परिपक्व अन्न पर घी से अभिषेककर, षड्रसोपेत भोजन का भगवान् के लिए नैवेद्य चढ़ाना चाहिए। इन सब को करते समय आचमन करना चाहिए। अन्य क्रियाविधि के समय सिर्फ पानी का उपयोग कर सकते हैं। फिर लौंग, इलायची, सुगंध चंदन युक्त ताम्बूल को भगवान को समर्पित करना चाहिए। अंत में मूल मंत्र का जाप कर पुरूषोत्तम की स्तुति कर फिर प्रदक्षिणा कर प्रार्थना करनी चाहिए।

करोड़ों गायों के दान से क्रतुवों को करने से, ब्राह्मणों को खिलाने से, महादान करने से जो पुण्य फल प्राप्त होगा,

उस पुण्य तीर्थ में स्नान करनेवालों को वही पुण्य फल प्राप्त होगा। पितृदेवताओं के लिए तिलोदक अर्पण जो करेगा,

उसके परिवारों के सभी पाप दूर हो जाएँगे। अन्य तीर्थों में किये पाप उस सागर तट पर दूर हो जाएँगे। वहाँ स्नान करनेवालों को यमकिंकर देख भाग जाएँगे। देवता लोग यहाँ नित्य स्नान करने के लिए उत्सुक रहते हैं। जो भक्त उस सागर में स्नान करते समय नारायण की स्तुति करेगा, वह ब्रह्म हत्या, सुरापान, गोहत्या तथा पँचपातकी होने पर भी पाप से मुक्त होगा। इसमें कोई संदेह नहीं।

उस समुद्र में स्नान करनेवाले के कुल की वृद्धि होगी। उसे करोड़ कपिल गायों के दान का फल मिलेगा, अन्य सभी तीर्थों में स्नान करने का पुण्य फल भी मिलेगा और अपने जन्म के साफल्य के लिए वहाँ पितृ देवताओं के लिए तर्पण छोड़ना होगा। उस पारावार में नहाने वालों को असाध्य चान्द्रायण व्रत, तपस्या, अग्निष्टोमादि यज्ञ आदि आसान हो जाएंगे। यहाँ जो एक महीना पितृतर्पण, और श्राद्ध पिंड प्रदान करेगा, वह ब्रह्मलोक वासी बनेगा। जो उन महत्वपूर्ण कार्यों को करेगा वह आद्यत में मुक्ति प्राप्त करेगा। ऐसे व्यक्ति को श्री कृष्ण, बलराम और सुभद्रा को प्रणाम कर, उनके रूपों का स्मरण करते हुये वहाँ से प्रस्थान करना चाहिए।

## भाग – 31

जैमिनी महर्षि ने द्विजों को इन्द्रद्युम्न जलाशय के विषय में इस प्रकार कहा – "हे द्विजो! इन्द्रद्युम्न जलाशय अश्वमेध

याग का एक अंग है। भक्त को अपने शौचादि कर्मों से निवृत्त होकर, उस जलाशय को प्रणाम कर, मंत्र को जपते हुये, पानी में उतरकर, वारूण मंत्र को पाँच बार और अघमर्षण मंत्र को तीन बार जपते हुये स्नान करना चाहिए। फिर विष्णु - गायत्री के साथ हरि का स्मरण करना चाहिए। भक्त को देवताओं और पितरों के लिए तर्पण छोड़कर नृसिंह स्वामी के दर्शन करने चाहिए। यहाँ हरि का दर्शन करनेवाले के करोड़ों जन्मों में किये पाप दूर हो जाएंगे।"

इन्द्रद्युम्न ने अथर्व मंत्र से नृसिंहस्वामी की पूजा की। इसी मंत्र का उच्चारण कर ब्रह्मा ने जगन्नाथ की काष्ठ मूर्ति की प्रतिष्ठा की। नृसिंह स्वामी की विविध सुगंधित फूलों से पूजा कर, कपूर, अगर एवं चंदन का लेपन करना चाहिए। गाय के घी से बनाया खीर, कर्पूरखण्डयुक्त मोदक, आदि मिष्टान्न का नृसिंहस्वामी को नैवेद्य चढ़ाना चाहिए। इनको जो स्पर्श कर, प्रणाम कर और पूजा करेगा वह देवत्व, अमरेशत्व, गंधर्वत्व, ईशत्व, वशित्व, सार्वभौमत्व आदि में से कोई एक अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त कर सकेगा। इसमें कोई संदेह नहीं।

जैमिनी ने द्विजों को पंचतीर्थ विधान के बारे में ऐसा बताया - "जो भक्त पाँचदिन पंचतीर्थ विधान का आचरण करेगा उसे पुनर्जन्म नहीं लेना पड़गा। इन्द्रद्युम्न जलाशय में जो भक्त सवेरे पूर्वोक्त विधि प्रकार नहाकर, एक बार भोजन करते हुये पंच दिवस पालन करेगा तथा पुरूषोत्तम, बलभद्र एवं सुभद्रा के दर्शन करेगा वह पाप राशि से मुक्त होगा।"

जैमिनी ने द्विजों को रथ यात्रा विधि के बारे में इस प्रकार कहा – "जगन्नाथ के रहने के लिये स्थायी रूप से

पत्थर का मंच बनाना चाहिए। जगन्नाथ के स्नान के लिए ब्रह्मा के साथ ब्रह्मर्षि नारद स्वर्ग से गंगाजल लायेंगे। मूर्ति को मंच की दक्षिणो दिशा में प्रतिष्ठित करके, कूप-जल को कलशों में मंत्र से भरना चाहिए।

सभी वर्णवाले बलभद्र की मूर्ति को आगे चलाकर, पीछे जगन्नाथ की मूर्ति को चलाते समय चामरों एवं तालवृंतों से झलते रहना चाहिए। जगन्नाथ को लगाये चन्दन को नहीं निकालना चाहिए। प्रतिमाओं को सावधानी वर्तते हुये लेजाना चाहिए क्योंकि यदि कोई प्रतिमा गिरेगी तो राजा एवं राज्य के लिए भय उत्पन्न होगा और नीचे गिराने वाले को दुःख भोगना पड़ेगा तथा वह नरकवासी बनेगा।

कई मन्वंतर बीतने पर भी उन विग्रहों के प्रति भक्तों की भक्ति, विश्वास आदि वृद्धि होती जा रही है। द्वापर युग में कृष्णार्जुन यहाँ आकर तीन दिन विधि पूर्वक मधुसूदन की पूजा कर, स्तुति कर फिर द्वारका चले गये। हर युग में विष्णु मानवावतार धारण कर धर्म की स्थापना करते हुये आये और फिर अपने वास्तविक स्वरूप में समाहित हो गये।

पूर्व, ब्रह्मा के प्रार्थनानुसार भगवान काष्ठ रूप धारण कर परार्थपर्यंत यहाँ रहेंगे। श्री जगन्नाथ की जिस प्रकार परिचर्या की गयी उसी रीति से सुभद्रा, बलभद्र के लिए भी करनी चाहिए। छत्र धारण, चामरों का उपयोग, कालागुरु धूप का उपयोग, मंगल वाद्यों का आयोजन आदि कार्यक्रमों के साथ दीपिका श्रेणियों को भी सजाना चाहिए।

दिव्य मूर्तियों को वहाँ के कलश के पानी से स्नान कराना चाहिये। उस वक्त जो देखेगा उसे मातृगर्भोदक से

स्नान करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। जेठ मास में जगन्नाथ के स्नान विधि को देखने वाले के जाने या अनजाने में किये गये पाप दूर हो जाएँगे और महोत्सव को देखनेवाले के सर्व संताप शमित हो जाएँगे। करोडों जन्मों में संचित स्नान, दान, तप, श्राद्ध, जप, यज्ञादि के पुण्य फल सिर्फ इस भगवान के स्नान को देखने से ही प्राप्त हो जाता है। जगन्नाथ को स्नान विधि को जो देखेगा दक्षिणा, पुण्य क्रतु, महादान, द्विजों को भोजन खिलाना, गया में श्राद्ध, तीर्थ स्नान आदि पुण्य कार्य के समान होंगे। पुरूषोत्तम को मंच पर स्नान कराते समय जो देखेगा वह सैकड़ों गुना पुण्य फल को प्राप्त करेगा। स्नान के समय जय जगन्नाथ का उच्चारण करना चाहिए। भक्तों को दक्षिणा देनी चाहिए और ब्राह्मणों को भोजन, वस्त्र आदि देना चाहिए।

जो श्री जगन्नाथ के स्नान को देखेगा वह जीवन्मुक्त होगा। उस प्रकार के भक्तों का, राजा को सम्मान करना चाहिये। जो श्री स्नानावशिष्ट पूत जल से, भद्रासन के ऊपर से स्नान करेगा, वह अपमृत्यु को जीतेगा। अपुत्र और मृत पुत्रवाले, पुत्र संतानवाले बनेंगे। निर्धन धनी बनेगा। गर्भिणी स्त्री दीर्घायुवाला और गुणवान पुत्र को जन्म देगी।

## भाग – 32

जैमिनी ने द्विजों को दक्षिणा मूर्ति के दर्शन के बारे में इस प्रकार कहा – "हे द्विजो! दक्षिणामूर्ति के दर्शन से अश्वमेधयाग फल की प्राप्ति होगी। उस देव की यथाविधि पूजा कर भक्ष्य, भोज्य आदि का नैवेद्य चढ़ाना चाहिए। बलराम, श्री कृष्ण तथा सुभद्रा की पूजा-द्रव्यों से अर्चना कर,

ब्राह्मणों को तथा भक्तों को वस्त्रादि से सम्मानित करना चाहिये। बाद में उन मूर्तियों को दक्षिणाभिमुख होकर लेकर जाना चाहिये और उनके साथ लेजाते हुये सुभद्रा का जो दर्शन करेगा वह दिव्यफल को प्राप्त करेगा। उस समय जो जगन्नाथ के दर्शन करेगा वह उस स्वामी के स्नान के दर्शन से प्राप्त पुण्यों को समग्ररूप से प्राप्त करेगा। उसी समय उनको आरती उतारनी चाहिए। प्रासाद में प्रवेश करते समय उन मूर्तियों को नहीं देखना चाहिए।"

जैमिनी ने आगे कहा कि जेठ पंचकव्रत प्रधान व्रतों में श्रेष्ठ है और ज्येष्ठ फलप्रदवाला हैं। एक वर्ष जगन्नाथ के दर्शन का फल उनके मंच के दर्शन से प्राप्त होता है। यही फल जेठ महीने में उनके स्नान विधि को देखने से प्राप्त होता है।

जेठ महीने में, पूर्णिमा के गुरुवार में, सर्व पाप प्रणाशिनी के शुभयोग में सर्वक्षेत्र, सर्वतीर्थ, सप्तसागर, ऋतुएँ महादान, तप, अष्टादश विद्याएँ आदि सभी को पुरुषोत्तम क्षेत्र को प्राप्ति होती है। उस पर्व दिन में जगन्नाथ की पूजा कर उनके दर्शन करनेवाला सर्व पापों से मुक्त हो जाता है।

जेठ शुद्ध दशमी के दिन, सवेरे संकल्प करते हुये भक्त पाँच पुण्य तीर्थों में नहाकर, घर आकर पुण्य तीर्थोदक से भरे कलश तांबे के पत्ते से ढकना चाहिए। अक्षतों से भरे पात्र के गले में कपडा बांधना चाहिए और उसके बीच जगन्नाथ की प्रतिमा को रखना चाहिये और उनके वाम भाग में श्री देवी की प्रतिमा को रखना चाहिए तथा उनके दक्षिणी भाग में गरुत्मंत की मूर्ति को रखना चाहिये। फिर

आचार्य को सर्वोपचारों से उनकी पूजा करनी चाहिए। इस तिथि में पूजा करनेवाले के दस करोड़ पाप नष्ट हो जाएँगे। एकादशी तिथि में पाँच सोने के सिक्कों से बनाये गये नारायण की पूजा करनी चाहिए! जगन्नाथ स्वामी के लिए खीर एवं रंभा फलों का नैवेद्य चढ़ाना चाहिए। द्वादशी तिथि में स्वर्ण यज्ञवराहमूर्ति की विविध फलों से अर्चना कर भक्ष्य भोज्य फलों का नैवेद्य चढ़ाना चाहिए। इस तिथि में अर्चनाकरनेवाले के गत जन्म में एक वर्ष किये गये पाप सभी नष्ट हो जाएँगे। त्रयोदशी तिथि में चार सोने के सिक्कों से शंखचक्र गदाधारी मूर्ति बनाकर, सर्वोपचारों से पूजाकर स्वादिष्ट परवान्न का नैवेद्य चढ़ाकर, उस, मूर्ति को प्रणाम करना चाहिए। चतुर्दशी तिथि में चार सोने के सिक्कों से नृसिंहस्वामी की मूर्ति बनाकर, जपा कुसुमादि मालाओं एवं उत्तम पुष्पों से सजाकर, नैवेद्य चढ़ाकर, प्रदक्षिणा, प्रार्थना और प्रणाम कर दिन-रात पाँच-पाँच दीपकों को जलाना चाहिए। रात में पुराण प्रवचनों से वासुदेव को संतुष्ट कर जागरण करना चाहिए। पूर्णिमा में सबेरे उन मूर्तियों के दर्शन कर, समुद्री स्नान कर, कुंभ में स्थित मूर्तियों को पूजाकर, पुरोहित द्वारा मन्त्रों से अग्नि कार्य को करना चाहिये। होम कर्म में स्वाहा कहते हुये अलग-अलग देवता का सौ-सौ बार मन्त्रोच्चारण करना चाहिए। फिर पूर्णाहुति कर पुरोहित को दक्षिणा देना चाहिए। आचार्य को सोने के सींग, चाँदी के खुर, एवं स्वर्ण दक्षिणा के रूप में देने चाहिए। उन सुन्दर प्रतिमाओं को भी गुरु को समर्पित करना चाहिए। ब्राह्मणों को मिष्टान्न खिलाना चाहिए। इसे ज्येष्ठपंचक व्रत कहते हैं। इस व्रत का आचरण करनेवाले को जगन्नाथ के

स्नान दर्शन से प्राप्त फल समग्ररूप से प्राप्त होगा। व्रत-दीक्षा के बीच में आने वाली एकादशी को निर्जल कहा जायेगा। उस तिथि का विधिपूर्वक अनुसरण करनेवाले को अपने जीवन काल में आये सभी एकादशी तिथियों में आचरण किये गये फल को प्राप्त करेगा।

# भाग - 33

जैमिनी महर्षि ने द्विजों को 'महावेदी' महोत्सव के विषय में इस प्रकार कहा – "द्विजो! वैशाख शुद्ध तृतीयाएवं रोहिणी नक्षत्र संयुत तृतीया तिथि महावेदी महोत्सव के लिए परम पवित्र है। आचार्य, अनुभवी बढ़ई को वस्त्र प्रदान देकर उस वन में लेजाकर, मन्त्रों से आग का सृजन कर, घी से होमकर वहाँ के हर वृक्ष की जड़ में घी का अभिवर करना चाहिए।

आचार्य को, मन्त्र का उच्चारण करते हुये, गरुड़ ध्वज स्मरण करते हुये, घी से संस्करित की गयी वृक्ष की जड़ का कुल्हाड़ी से टुकड़ों में काटना चाहिए। बढ़ई को वहाँ तैनात कर, रथ के निर्माण के लिये वहीं प्राप्त काष्ठ को, सृजन की हुई आग से संस्करित कर रथ को बनाने की शुरूआत करनी चाहिए।

जगन्नाथ के रथ में सोलह चक्र होने चाहिए और उसे भली प्रकार सजाना चाहिये। बढ़ई को स्थूल देह, लंबी नाक, कुडलियों से युक्त गरूड़ का निर्माण करना चाहिए। उसे गरूड़ साँप को पकड़कर पंख फैलाकर उड़ते हुए चित्र को बनाना चाहिए। फिर उसे रथ पर रखना चाहिये। बलभद्र

के रथ में चौदह चक्र होने चाहिये। सुभद्रा के लिये बारह चक्केवाला रथ बनाना चाहिये। रथ पर ध्वज पद्मकाष्ठ से बना हुआ होना चाहिये।

इंद्रद्युम्न महाराज उन रथों को पूर्व प्रतिष्ठा विधि के अनुसार करना चाहिये। पक्षी, बिल्ली, नेवला, अशुचिवाला मनुज का उस रथ पर चढ़ना अशुभ है। तीन दिन के बाद अंकुरार्पण करना चाहिये और यदि किसी भी प्रकार अपशकुन हो तो शांति करनी चाहिए।

रथों के ले जाने के लिए राजमार्ग के दोनों ओर पुष्प, माला, गुल्म, फल रेशमी कपड़े, चामर आदि की तैयारी करनी चाहिये। मार्ग को साफ-सुथरा रखना चाहिए।

महादेवी महोत्सव में आभूषणों को पहले नर, नर्तक, गायक, भेरी, ढक्का, मृदंग, झंड ध्वजाएँ, वाहन, अलंकृत हाथी, घोड़े आदि लेकर उत्सव को सफल बनाना चाहिये।

आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष में पुष्यमी नक्षत्र युक्त द्वितीया तिथि में जगन्नाथ को पूजा करनी चाहिये। ब्राह्मण वैष्णव, यति, तथा तपस्वियों के साथ राजा जगन्नाथ स्वामी को, रथ यात्रा के लिए, रथ के ऊपर गुंडिचा मंडप में आने तथा लोकानुग्रह के लिए प्रीति के साथ भूतल पर चरण रख आने के लिए विनती करनी चाहिये।

मार्ग में "जितंत" मन्त्र का उच्चारण करते हुये, द्विज शाकुन सूक्तों का, कुछ मन्गल गाथाओं का और कुछ जय-जयकार करते रहना जाहिए। स्वर्ण पात्रों में कृष्णागुरू धूप रखनी चाहिए। चारों ओर उसके परिमल को फैलाना चाहिए।

जगन्नाथ स्वामी के रथ के दोनों ओर छत्र रत्न ध्वज आदि लेकर चलना चाहिए। सभीजातवाले, निर्धन, धनी, महात्मा आदि बिना भेद-भाव के जगन्नाथ के दर्शन केलिए आ सकते हैं।

नृत्य, गीत एवं मंगलवाद्यों के साथ उत्सव मनाना चाहिये। बलराम, श्री कृष्ण और सुभद्रा की मूर्तियों को रथ के मध्य भाग में रखना चाहिये। विविध वस्त्रों से, मालाओं से सजाकर सभी उपचारों के साथ उन दिव्य मूर्तियों की पूजा करनी चाहिए। यह रथयात्रोत्सव प्रतिवर्ष मनाना चाहिए। यह सबसे श्रेष्ठ उत्सव है। देवता लोग इस महोत्सव को देख जगन्नाथ के अनुग्रह के पात्र बनकर लौट जाते हैं। यात्रा के समय जो उस भगवान् के दर्शन करेगा वह वैकुंठपुर को जायेगा।

जैमिनी महर्षि ने द्विजों को महावेदी महोत्सव की महिमा के बारेमें इस प्रकार कहा - "महावेदी महोत्सव की महिमा अपार है। इस उत्सव के स्मरण मात्र से पूर्व जन्मों में किये पाप दूर हो जायेंगे। यात्रा के समय उन त्रिमूर्तियों को जो देखेगा उसके बहुजन्मों में किये पाप दूर हो जायेंगे। रथ की छाया जिस पर पड़ेगी, वह ब्रह्महत्या पाप से मुक्त हो जाएगा। रथ की रेणु जिस पर पडेगी वह तीनों प्रकार के पापों से मुक्त हो जायेगा। देवता-मूर्तियों को प्रणाम करने वालों को असंख्य गोदान, कन्यादान एवं अश्वमेधयाग करने का प्राप्त फल मिलेगा। वासुदेव की सन्निधि में जय शब्दों से स्तोत्र करनेवालों के सभी पाप दूर हो जाएँगे। उस उत्सव में लय, ताल को जाने या अनजाने नृत्य करनेवाले एवं गीत गानेवाले सभी मुक्ति का भागी बनेंगे। गुंडिचा नगर से जाते

हुये, जय कृष्ण कहनेवाला मातृ गर्भवास से प्राप्त दुःख नहीं पायेगा। जो भक्त चामरों से व्यजनों से, पुष्प गुच्छों से पुरूषोत्तम को पंखा देगा वह अतुलित भोगों का भोगते हुये अंत में मुक्ति को प्रप्त करेगा। जो भक्त सहस्र हरिनाम का उच्चारण करते हुये रथ की परिक्रमा करेगा वह वैकुंठपुर में आएगा। ब्रह्मा स्वयं वेद ऋकों से स्तुति करते हुये उत्सव में भाग लेकर सनातन भगवान को बार-बार प्रणाम करते हैं।

महावेदी महोत्सव सभी उत्सवों में श्रेष्ठ है। उसमें भाग लेना बड़े भाग्य की बात है, इससे सर्व पाप नष्ट होकर, सर्व तीर्थ फल प्राप्त होंगे। यहाँ का दान अक्षय होगा। गुंड़िचालय में जगन्नाथ के समक्ष किये जाने वाले दान का फल अक्षय होगा। स्वामी की प्रीति के लिये किये दान, उपहार आदि अक्षय पुण्य प्रदान करेंगे।

जो भक्त भगवान् को देखते हुये, बार-बार प्रणाम करते हुये पदधूलि से परिप्लुत होगा वह वैकुंठवासी होगा। पुरूषोत्तम को यथा विधि पूजा जो देखेगा वह संसार की बाधाओं से मुक्त होकर ब्रह्मलोक निवासी होगा। ब्रह्मा ने रथ पर स्थित तीनों देवताओं को जिन स्तुतियों से तृप्त किया उसी प्रकार भक्त आज भी स्तुतिकर, ब्रह्मलोक निवासी बनतें हैं।

## भाग - 34

जैमिनी महर्षि ने द्विजों को पूजाविधि के बारे में इस प्रकार कहा - "भक्त, पुरूषोत्तम को प्रीति के लिये पूजोपहारों से अर्चना कर भक्ष्य, भोज्यादि का नैवेद्य चढ़ाकर, गीत नृत्यकर धूप-दीप, गंध, तैलादि प्रदीपों से तृप्त करना चाहिए।"

इन्द्रद्युम्न तीर्थ में भक्त नहाकर यथाविधि पितरों एवं देवताओं के लिये तर्पण छोड़कर नृसिंहस्वामी को पूजा कर, महावेदी जाकर सात दिन पूर्व विधि के अनुसार पूजाकर, नमस्कार करना चाहिये। रात में जगन्नाथ के दर्शन दस गुना फल प्रदान करनेवाले होते हैं। उनके सान्निध्य में किये गये सत्कर्म, करोड़ों गुण फल प्रदान करनेवाले होंगे।

जैमिनी ने द्विजों को पितृकार्य के बारेमें इस प्रकार बताया - "पितरों के लिये पितृ नक्षत्र मघा है। पन्चम तिथि भी श्रेष्ठ है। तिथि और नक्षत्र के संयोग से वह तिथि महापुण्यतम होगी। उस तिथि में किये गये श्राद्ध कर्म से पितरों को मुक्ति मिलेगी।

सर्व तीर्थमय जगन्नाथ-सन्निधि में श्राद्ध कर्म करके एक सौ पिंड प्रदान करनेवाला, ब्रह्मलोकवासी होगा। जो तिलों से तर्पण और उत्तम प्रीतिवाला पितृकर्म नहीं कर पायेगा उसे पितरों की मृत्यु तिथि में ब्राह्मणों को खिलाने या भोजन के मूल्य को देना चाहिए। पुण्य क्षेत्र में गुणागुण की सोच नहीं करनी चाहिये क्योंकि सुदुर्लभ योग में द्विज सभी मुनियों के के समान हैं। इन्द्रद्युम्न सरोवर में श्राद्ध कर्म करनेवाला सर्वतोमुखाभि वृद्धि प्राप्त करता है।

भाद्रपद मास की अमावास्या तिथि में पितरों के लिए किये जानेवाले श्राद्ध फल, गया में एक हजार श्राद्ध कर्मों के करने से प्राप्त फल के समान होंगे।

आषाढ़ शुक्ल तिथि में, इन्द्रद्युम्न जलाशय में वन जागरण नामक उत्तम व्रत को विधि प्रकार पालन करनेवाला पुरुष धर्म को प्राप्त करेगा और उसके मनाभीष्ट पूरे हो जाएँगे।

रथ यात्रा से जो फल मिलता है वही फल इस व्रत के आचरण से भी प्राप्त होता है ।

## भाग- 35

जैमिनी महर्षि ने द्विजों को रथ की रक्षा-विधि इस प्रकार बतायी – "हे द्विजो! भूत, प्रेत और पिशाचों से रथों की रक्षा के लिए विधि प्रकार हर रोज उन तीनों रथों के ध्वजों के पास रहनेवालों को गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नृत्य, गीतादि उपचारों के साथ पूजा करनी चाहिए । अशुचि मानव, गाँव के पशु या पक्षी रथ पर नहीं रखना चाहिए । रथ यात्रा को नौ दिन मनाना चाहिए । गुंड़िचा मंडप से लेकर दक्षिणभिमुख होकर जाते हुये रथ पर रखे गये उन त्रिमूर्तियों के दर्शन करनेवालों को मुक्ति प्राप्त होगी । रथ के आगे चलनेवाले भक्त मूर्तियों की स्तुति करते हुये, प्रणाम करते हुये, पुष्पार्पण करते हुये, नाचते हुये, छत्र चामरों को हिलाते रहना चाहिए । नीलाचल आते हुये उन त्रिमूर्तियों के जो दर्शन करेगा वह वैकुंठवासी होगा । सागर तटपर, रथ पर बैठकर, भ्रमण करते हुये जगन्नाथ के अभिमुख रहकर जो प्रणाम करेगा वह ब्रह्मलोक निवासी होगा । जो भक्त इस उत्सव का स्मरण करेगा या सुनेगा, वह इन्द्र लोकवासी बनेगा । जो भी मानव श्रद्धा भक्ति के साथ इस रथोत्सव को करेगा या करवायेगा वह इह पर सुखों को भोगकर अंत में मुक्ति पा सकेगा ।

## भाग – 36

जैमिनी महर्षि ने द्विजों को शयनोत्सव के विषय में इस प्रकार बताया – पुरूषोत्तम क्षेत्र में निवास करनेवालों

को वही फल मिलता है जो काशी क्षेत्र में बहुयुगों से निवास करने से प्राप्त होता है। श्री जगन्नाथ स्वामी की पूजा के लिए आषाढ़ मास से लेकर कार्तिक मास तक श्रेष्ठ है। जो भक्त इन चारों महीने या एक दिन भी जगन्नाथ की सन्निधि में बितायेगा वह हजार अश्वमेध याग फल को प्राप्त करेगा। श्री हरि के चतुर्मासों में शेषतल्पपर सोने पर अन्य क्षत्रों में नहीं निवास करेंगे। यहाँ शेष आठ महीने रहकर जगन्नाथ के दर्शन प्रतिदिन करने से जो पुण्य फल प्राप्त होगा वह चातुर्मास्य के एक दिन भी उनके दर्शन करने से प्राप्त होगा।

जगन्नाथ स्वामी के लिए आषाढ़ शुक्ल एकादशी में शयन महोत्सव मनाना चाहिये। उनके समक्ष शय्या का प्रबंध करना चाहिये उस शय्या पर कोमल वस्त्रों एवं तकियों को रखना चाहिये उस शय्या को विविध चित्रों से सजाना चाहिए। उसमें देवताओं के उत्सव मूर्तियों को रखकर पूजा करनी चाहिये। उन्हें पंचामृतों से स्नान कराना चाहिये। उन मूर्तियों को सुगंध व चंदन का लेपन कर वस्त्राभरणों से अलंकार कर, यथाविधि पूजा करनी चाहिए। फिर पुरूषोत्तम की स्तुति कर उन मूर्तियों को सुलाना चाहिये। शयन मंदिर को बंद करना चाहिये। उन चारों महीनों में जगन्नाथ के सोते समय भक्तों को व्रतों एवं सत्कालक्षेपों से समय बिताना चाहिये।

जैमिनी महर्षि ने द्विजों को चातुर्मास्यव्रत के नियमों को इस प्रकार बताया-हे विप्रो! चातुर्मास्य दीक्षा का आचरण करनेवाले भक्त को पलंग या बिछौने पर नहीं सोना चाहिये झूठ नहीं बोलना चाहिए, मांस, परान्न, मूली, बैंगन आदि नहीं खाना चाहिए, मधुपान नहीं करना चाहिए, अभोज्य

वस्तुओं, सफेद राई, छोटे चनों को नहीं छूना चाहिए। उसे जई और आशुधान्य नहीं खाना चाहिए। उसे सब्जियाँ, दूध, दही, बडा आदि आहार के रूप में खाने चाहिये। उसे जूते नहीं पहनने चाहिये। जो मनुज नियमरहित होकर वर्षा ऋतु के चार महीने बितायेगा, उस पाप की शांति के लिए उसे कार्तिक मास में उन्हीं पूर्वोक्त नियमों का पालन करना चाहिये। कार्तिकमास में जगन्नाथ की पूजा कर, तर्पण छोडकर ब्राह्मणों को खीरान्न के साथ भोजन कराकर, यथाशक्ति सोना और वस्त्र दान में देना चाहिए। इस मास में भी व्रत का आचरण न कर सकनेवाले भक्त को पूर्वोक्त विधि के अनुसार करना चाहिऐ।

जैमिनी ने विप्रों से चांद्रायण व्रत के बारे में कहा कि भक्त को चांद्रायण व्रत का आचरण करते समय दूध पीकर, शाकाहार का भक्षण करने से इस लोक में उत्तम भोगों को भोग कर शाश्वत रूप से मोक्ष प्राप्त करेगा।

आगे जैमिनी ने द्विजों को भीष्मपंचक व्रत के बारेमें कहा कि जो भक्त चान्द्रायण व्रत का आचरण नहीं कर सकता वह भीष्ममंचक व्रत का आचरण कर सकता है। भक्त वन्यवृत्ति का आचरण कर सकता है। यह सर्वपाप प्रशमन आयुर्यशोवृद्धि कर मनोभीष्टों का पूरा कर व्रती को धन्य बना सकता है। इसका आचरण करनेवाला, महाक्रतु के फल, तीर्थ स्नान का फल एवं तपोदान से प्राप्त फल को समग्ररूप से पासकेगा।

जो भक्त शयनोत्सव को मनाता हो या देखता हो, वह मातृ गर्भ नरक का अनुभव नहीं करेगा। जगन्नाथ के

समक्ष जो भक्त व्रत का रखने की कसम खाकर फिर उस व्रत की परिसमाप्ति करेगा वह ब्रह्मलोक का निवासी बनेगा।

## भाग - 37

जैमिनी ने द्विजों को दक्षिणायन के विषय में इस प्रकार कहा - हे द्विजो! संक्रांति के पहले बीस कलाएँ बताई गई हैं जिनमें दक्षिणायन पुण्यकाल है। जगन्नाथ स्वामी के लिए अभिषेक उस प्रकार करना चाहिये जिस प्रकार पंचामृतों के साथ उनके शयन के समय किया जाता है। दक्षिणायन में जो श्रीपति के दर्शन करेगा वह सर्वपापों से मुक्त होकर विष्णुलोक पहुँचेगा।

आगे जैमिनी ने द्विजों को बलि और नैवेद्य के विषय में इस प्रकार बताया - हे द्विजो! राजा से तैनात किये गये आचार्य, ईशान्यदिशा में प्रचण्ड द्वारपाल तथा क्षेत्रपाल को, दक्षिण में विरूप तथा खगपति को नैऋति दिशा में दुर्गा व सरस्वती को, पूर्व दिशा में महालक्ष्मी व महेन्द्र को उत्तर दिशा में पारिषदों व पशुपति को, पश्चिम दिशा में नारद को आग्नेय दिशा में अग्नि को, वायव्य दिशा में विश्वसाक्षी को और विश्वकर्ता को मध्यभाग में बलि को चढ़ाना चाहिये। बलि के बाद उस अग्नि में उत्तम पाक को बनाना चाहिये। गरम वस्तुओं को भगवान को नैवेद्य नहीं चढ़ाना चाहिये। लक्ष्मीदेवी स्वयं आर्यों का, शूद्रों को तथा सेवकों को लौकिकरीति से पका रही है और नारायण शरीर धारी होकर उसके साथ हर रोज भोजन कर रहे हैं। पापी उस नैवेद्य को सिर पर रखे तो वह अमृत हो जाता है। उसे खाने से मद्यपानादि के महापाप, उस नैवेद्य को सूंघने से

मानसिक पाप तथा उसे देखने से दृष्टि से होनेवाले सभी पापों का नाश हो जाएगा। उसके आस्वादन से श्रवणेंद्रियों से किये पाप, उसे छूने से त्वचा से किये पाप, असत्य के वचनों से किये पाप तथा उस नैवेद्य को शरीर पर लगाने से सभी शारीरिक पाप नष्ट हो जाएँगे। जगन्नाथ के नैवेद्य को पितृदेव के कर्मों में उपयोग करने से, सुर तृप्त होकर विष्णुलोक वासी हो जाते हैं। द्विज, नर रूपों को धारण जगन्नाथ के नैवेद्य को खाते हैं।

जैमिनी ने मुनियों को श्वेतराज के वृत्तान्त के विषय में इस प्रकार बताया – हे द्विजो! त्रेतायुग में भगवान का अभिमान पात्र श्वेत नामक महाराजा रहता था जो व्रत का आचरण कर पुरूषोत्तम का महाभक्त हो गया था।

इंद्रद्युम्न राजा के सामान, 'श्वेत' ने भी जगन्नाथ स्वामी के लिए षड्रसापेत विविध भक्ष्य भोज्यों को प्रतिदिन पकवाता था। भक्ताग्रेसर श्वेत अधिक धन व्यय कर विचित्र पुष्पों से माल्यार्पण कर, सुगंध का लेपन कर, दिव्य गीत, वाद्य ध्वनियों के साथ नृत्य कराकर समयानुकूल राजोपचारों को कर वैष्णव शास्त्रोक्त के अनुसार वह राजा भी विचित्र भोगों का भगवान् के लिए समर्पण करता था।

एक दिन श्वेत राजा ने हाथ जोड़कर प्रासाद के द्वार के समीप पहुँचकर, भगवान के लिये किये उपचार एवं अर्पित किये गये पदार्थ आदि को देखकर कुछ ध्यानावस्था में सोचा कि क्या भगवान् मानव द्वारा अर्पित वस्तुओं को स्वीकार करेंगे? मानव निष्ठावान होकर मानसोपचारों से भगवान को पूजा कर रहे हैं; क्या भगवान इससे संतुष्ट नहीं होंगे? फिर

राजा ने लक्ष्मीदेवी के साथ भगवान को भक्ष्य भोज्य खाते हुये देखा। भगवान् के प्रतिरूप को देख श्वेत राजा ने अपने को कृतार्थ समझा लेकिन आँखें खोलने के बाद भी ये सब श्वेत को दिखाई दिये। राजा ने परमानंदित होकर, भगवान् का आशीर्वाद लेकर निष्ठा के साथ अपने राज्य में मृत्यु के नाश होने एवं मरनेवालों को मुक्त के लिये तपस्या की।

श्वेत राजा के एक सौ वर्ष तपस्या करने के बाद उन्हें नृसिंहस्वामी के दर्शन हुए। उनके वाम भाग में लक्ष्मी थी। देव, सिद्ध, तथा भक्तों ने नृसिंहस्वामी की स्तुति की। उनके दर्शन होने से श्वेत राजा विनम्र भाव से हर्षित होकर गद्-गद् वचनों से प्रभु के अनुग्रह के लिये प्रार्थना कर जमीन पर गिर पड़ा। तपस्या से कमजोर होजाने के कारण राजा के नीचे गिर जाने से भक्तवत्सल स्वामी ने इस प्रकार कहा - "हे वत्स! उठो, तुम्हारी भक्ति से मैं अति प्रसन्न हूँ, तुम अपनी इच्छानुसार वर माँगो।" श्वेत राजा ने उठकर कहा - "हे स्वामी! मेरे राज्य में कोई भी मानव असमय नहीं मेरे और सकाल में मरनेवाला मानव मुक्ति को पाए।" नृसिंहस्वामी ने प्रसन्न वदन होकर कहा - तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। तुम एक हजार वर्ष तक राज्य का उपभोग कर मेरे दक्षिणी भाग में रहो। यदि तुम मेरे प्रसाद को खाओगे तो तुम्हारी शेष पापराशि दूर होगी और तुम अंत में मेरे सायुज्य को पाओगे।"

"वटवृक्ष और सागर के मध्य भाग में मेरे विष्णु अवतार का मत्स्य रूप के सामने स्फटिकामल प्रतिमा रूप से निवास करो। तुम श्वेत माधव नाम से विख्यात होगे। तुम्हारे दोनों के बीच छोड़े मानव, पशु पक्षी आदि कीटक भी मुक्त पायेंगे। यह समूचा क्षेत्र मुक्तिप्रद है। तुम्हारे राज्य

में जो प्रजा मेरे निर्माल्यों को खायेगा उन्हें कभी भी अकाल मृत्यु प्राप्त नहीं होगी।" भगवान राजा को इस प्रकार वर प्रदान कर अंतर्धान हो गये।

## भाग - 38

जैमिनी ने द्विजों को जगन्नाथ स्वामी के प्रसाद के बारे में इस प्रकार बताया - "हे द्विजो! भगवान नारायण द्वारा खाये गये उच्छिष्ट को खानेवाला सभी पापों से मुक्त होगा। किसी के छूने से भी वह प्रसाद अपवित्र नहीं होता है। स्वामी के प्रसाद को जो भी भक्ति से, लोभसे, प्रसन्नता से या भूख से खायेगा वह पाप से मुक्त होकर ऐहिकामुष्मिक सुखों को प्राप्त करेगा। स्वामी का प्रसाद श्रेष्ठ, शुभप्रद, सर्वरोगोपशमन, पुत्रपौत्राभि वर्द्धक, दारिद्रयहारी एवं विद्या, आयु एवं धन की वृद्धि करनेवाला है।

स्वामी के प्रसाद का क्रय-विक्रय नहीं करना चाहिए। जो मूढ अमृतरूपी प्रसाद की निंदा करेगा वह घोर कुंभीपाक में गिरेगा। प्रसाद का खाने के पहले मैं कुछ नहीं खाऊँगा ऐसा निश्चय करके भक्त उसे हमेशा खाए तो वह सर्व पापों से मुक्त होकर वैष्णव स्थान को प्राप्त करेगा। प्रसाद का इच्छानुसार उपयोग करने से भी कोई दोष नहीं लगेगा। मुर्गी के मुँह से वह प्रसाद गिरने पर भी ब्राह्मण उसे खा सकता है। उपवास के समय, अशुचि के समय, अनाचारी होने पर भी, मन से पाप का आचरण करनेवाले को भी, प्रसाद मिलते ही खा लेना चाहिए। यह प्रसाद गंगातुल्य है। प्रसाद के दर्शन से स्वर्गप्राप्ति और भक्षण से अघनाश होगा। लक्ष्मी द्वारा पकाये गये उस अन्न को चक्रपाणि युगमन्वंतरादि में प्रतिदिन खाते रहे।

जैमिनि ने विप्रों को कलियुग के प्रभाव विषय में इस प्रकार बताया - कालयुग में वेद को महिमा कम दिखाई देती है। धर्म एक दिखावा मात्र रहता है। लोग असत्यवादो, दभो, शठा, धर्मविमुखो, जिह्वा चांपल्यवाले, स्त्री को अपने चंगुल में फँसाने वाले होते हैं। वे तप व व्रत नहीं करते। वे अधर्मी, हिंसा, चित्त चांचल्य वाले होकर उत्तम कार्य नहीं करते। वे पर निंदा करते हुये कन्यों के कार्यों में बाधा डालते रहते हैं। वे अपनी पत्नो के साथ रमण न कर अन्य स्त्रियों के प्रति अनुरक्त होतें हैं।

द्विज-कलियुग में द्विज अग्निहोत्र, व्रत एवं अन्य पुण्य-कार्यों से विमुख हो रहे हैं। वेद पठन कर पारलौकिक कर्मों को न कर, धाखे से कमाये धन से अपना जीवन बिता रहे हैं। भूपति - कलियुग में राजा प्रजा रक्षण से विमुख होकर, कर वसूल करने में आसक्ति दिखानेवाले हैं। वे पापो बनकर चोर वत्ति वाले हैं। इस युग में वर्ण संकर होंगे। राजा दूसरों के धन को हडपेंगे। प्रजा श्रौत स्मार्तादि सत्कर्मों का आचरण नहीं करेगी। प्रजा दान, धर्म आदि कर्मों को नहीं करेगी।

इस कलिकाल में धनिकों और दरिद्रों को गांवों, नगरों आदि स्थानों में विष्णु का स्मरण व कीर्तन करना चाहिये। कलि कल्मष के नाश के लिये विष्णु काष्ठमय शरीर का धारण कर नोलाचल में उदभूत हुये, और जो उनके दर्शन व उनकी स्तुति कर उनके प्रसाद को जो खायेगा वह अवश्य हो मुक्ति को पायेगा। पूर्व में योगी, भगवान के उच्छिष्ट को खाने के कारण उनकी माया को जीतने के लिए उनसे प्रदान करने की प्रार्थना की। जैमिनी ने द्विजों से जगन्नाथ की

लीलाओं को वेद प्रोक्त बताया। वे बोले - हे द्विजो ! हरि लक्ष्मीदेवी के साथ पुरूषोत्तम क्षेत्र में शयनासन, भोगादि क्रीडाएं करना वेद प्रोक्त कहा जाता है। भगवान् कभी भी वेद के विरूद्ध कार्य नहीं करते। वेद की रक्षा हेतु विष्णु हर युग में अवतार लेतें हैं। वे कभी भी प्रमाण के विरूद्ध आचरण नहीं करेंगे क्यों कि प्रजा भी उसीका अनुसरण करेगी। जैमिनी ने द्विजों को शांडिल्य का वृत्तान्त इस प्रकार बताया-

बहुत समय पहले मध्य प्रदेश से शांडिल्य नामक एक ब्राह्मण पुरुषोत्तम आया। वह शास्त्रज्ञ और शिष्टाचारों में विमल था। वह शांतप्रकृतिवाला था। वह गृहस्थाश्रम धर्मो का अच्छी तरह पालन करता था। वह द्विज तीन दिन पुरूषोत्तम क्षेत्र में रहा लेकिन जगन्नाथ के प्रसाद को झूठा समझकर नहीं खाया तो उसके परिवार के लोगों ने नहीं खाया। वह शांडिल्य शीघ्र व्याधिग्रस्त होकर परिवार सहित कष्टों को झेलने लगा।

शांड़िल्य तीन दिन इस बीमारी के कारण जानने के जिज्ञासा से वहाँ रहने पर उसे सूझा कि एकबार सभी व्याधिग्रस्त नहीं हो सकते। अवश्य मुझ से कोई भूल हो गई होगी। इस प्रकार उस द्विज ने सोचकर भगवान् नारायण का ध्यान किया।

शांड़िल्य ने स्वप्न में हुई अनुभूति को इस प्रतार बताया-

"हे देवदेवेश ! मनोवाक्कर्मों से मैं ने कभी भी धर्मशास्त्र का अतिक्रमण नहीं किया। इस उद्देश्य से मैं यहाँ आया कि मेरे संचित पाप सभी दूर हो जाएँगे। जाने

था अनजाने में, मुझ से हुए अपराध को क्षमा करें। प्रारब्धयुत मेरे पाप के बोज के कारण हुई इस दुर्दशा का आप उपशमन करें। मैं आपका सेवक हूँ, इस द्रोही पर सदा अनुग्रह करें। इस प्रकार स्तुति करने से शांड़िल्य की देह-पाडा और: परिवार की पोडा दूर हो गई।"

जैमिनी ने द्विजों को शांड़िल्य के स्वप्न के बारे में इस प्रकार बताया - हे द्विजो ! नृसिंहस्वामो, लक्ष्मीदेवो से दियेगये परमान्न को स्वीकार करते हुये, ग्रासावशेष को बर्तनों पर बार बार फेंकने लगे। लक्ष्मोदेवा उनके हाथ में देते हुये भोज्य वस्तुओं को वे देर से खाने लगे। इसे देख शांड़िल्य ने विस्मित होकर नैवेद्य के निराकरण के कारण वह आत्मकृत दोष का स्मरण करनेलगा।"

शांड़िल्य ने स्वप्न में इस प्रकार नृसिंहस्वामी की स्तुति की - "हे स्वामो ! आप सर्वज्ञ हैं। हे ईश ! मूढ़ किस प्रकार आपकी इच्छा को जान सकता है ? फिर द्विज ने अपने पूरे शरीर में नृसिंहस्वामो के उच्छिष्ट को हाथ से भुक्तशेष को छिड़का। शीघ्र वह ब्राह्मण दिव्यदेह से प्रकाशित होने लगा। भक्ति को महिमा भक्त ही जान सकता है। शांड़िल्य अपने परिवार के पास स्वमी के प्रसाद को लेकर गया तो उसका ध्यान टूटा। शांडिल्य ने जागकर विस्मय के साथ उस स्वप्न के बारेमें सोचा।"

जैमिनो ने द्विजों को शांड़िल्य के पश्चात्ताप के बारे में इस प्रकार बताया - "हे द्विजो ! जगन्नाथ के प्रसाद को अस्वोकार करना देवद्रोह करके सोचकर शांड़िल्य इस प्रकार रोने लगा। हे जगन्नाथ ! तुम्हारो नैवेद्य की महिमा को मैं

जानकर मैं ने अत्यंत द्रोह किया। इस प्रकार रो रोकर स्वप्न में लब्ध हुये नैवेद्य को अपने परिवार के सदस्यों को दिया। उसके खाने से वे सब शीघ्र रोगमुक्त होगये।" फिर उन सभी ने पुरूषोत्तम क्षेत्र की महिमा की प्रशंसा इस प्रकार की-

"भगवान पुरूषोत्तम, नरों को अपना प्रसाद देकर उन्हें पापों से मुक्त कर रहे हैं। यह महिमान्वित क्षेत्र अन्यत्र दुर्लभ है। इस क्षेत्र की महिमा से भक्त स्वर्ग, भोग, मुक्ति आसानी से प्राप्त करते हैं। भवारण्य में आर्तों को भी मुक्ति दिला रहे हैं। फिर उन सब ने प्रसाद को बांट कर खाया। शांडिल्यादि रोगमुक्त होकर, पापरहित होकर देवताओं के समान प्रकाशित होने लगे। नैवेद्य की महिमा को सुननेवाले पापी होने पर भी मुक्ति को पा रहे हैं।"

जैमिनी ने द्विजों को निर्माल्य-फल के बारे में इस प्रकार बताया—

"भगवान के अंगों को पुष्प, चंदन, मालाओं से सजाकर सकाल में उन्हें निकाले जाने को ही निर्माल्य कहते हैं। उन निर्माल्यों के भक्षण करने से गुरू-पत्नी के साथ संगम से जनित पाप का नाश होगा। जगन्नाथ स्वामी के गंधादि लेपन को निकालने के समय कोई नहीं देखना चाहिए। एक लेपन और दूसरे लेपन के बीच समय रहे तो पुन: पिष्ठ का लेपन करना चाहिए।"

जैमिनी ने द्विजों को जगन्नाथ की मूर्ति से आर्द्रचंदनादि लेपन को निकालने से कोढ़ व्याधि के संभव के विषय में इस प्रकार कहा - "हे द्विजो ! जगन्नाथ की सेवा के लिए तैनात भक्त ने राजा के पुत्र को स्वामी के विग्रह से चंदन के लेपन

को निकालकर देने से उसने अपनी छाती पर लगाया तो उसके छाती पर श्वेत वर्ण से कुष्ठ रोग उत्पन्न हो गया। जिस भक्त ने उस लेपन को दिया उसके हाथ में भी कोढ़ हो गया।"

जैमिनी ने द्विजों को दमनक नामक दैत्य के विषय में इस प्रकार कहा- "हे द्विजा ! पूर्व समय में समुद्र में दमनक नामक राक्षस अपनी माया और पराक्रम से प्रजा को सताता था। ब्रह्मा की प्रार्थना से विष्णु ने मत्स्यावतार धारण कर उस दैत्य को चैत्रशुक्ल चतुर्दशी तिथि में पृथ्वी पर लाकर मार ड़ाला। भगवान की माया से वह मृत दैत्य तृण बन गाया जिसे माला के साथ गूँथ कर हरि के गले में ड़ाला गया। वह माला हरि के लिए प्रीतिकर हो गयी है। जो भक्त उस माला को धारण करेगा वह एक हजार अश्वमेघ-याग का फल प्राप्त करेगा और अंत में मुक्ति प्राप्त करेगा।

तुलसीदल की महिमा :

जो भक्त विष्ण के शरीर से निकाली गयी तुलसीमाला को धारण करेगा, उस माला में जितने दल होंगे उतने ही संख्यावाले अश्वमेघयाग फल को वह प्राप्त करेगा। निर्माल्य तुलसीमाला के पत्ते को जो खायेगा वह एक हजार जन्मों तक विष्णुलोक में निवास करेगा। हरि के लिए नैवेद्य चढ़ाये गये तुलसीदल मिश्रित भोजन को जो एक बार खायेगा, वह सोमपान का फल प्राप्त करेगा और जो आजीवन उस प्रकार के नैवेद्य को खायेगा, वह अवश्य मोक्ष को प्राप्त करेगा। जो भक्त नारायण के पादोदक या स्नान - जल को पीयेगा वह भक्त विविध पापों से मुक्त होगा। इस प्रकारजैमिनी ने द्विजों को तुलसीदल की महिमा के बारेमें बताया।

# भाग - 39

जैमिनी महर्षि ने द्विजों को चातुर्मास्य व्रतविधि एवं यात्रांतर फल के विषय में इस प्रकार कहा - "गुण भेद से बुद्धि तीन प्रकार की होती है - सात्विक, रज और तामस । प्रथम वर्गवाले मोक्ष की इच्छा से, भगवान् की प्रीति के लिए कर्मों का आचरण करते है । द्वितीय वर्ग वाले अन्यों के प्रति स्पर्धा से, कीर्ति की आकांक्षा से अधिक धन व्यय कर कर्मों का आचरण करते हैं । तृतीय वर्गवाले गतानुगत के प्रयोजन की प्रत्याशा कर, फल की अपेक्षा कर कर्मों का आचरण करते हैं ।"

## पार्श्वपर्यायणोत्सव :

जगन्नाथ स्वामी के दर्शन तथा दक्षिणायन में शयनोत्सव सर्वपापों को हरनेवाला है । उनको प्रदक्षिणा एवं सोये हुये स्वामी को घुमाना चाहिए । कृष्णपक्ष के एकादशी तिथि में स्वामी के शयनागार में जाकर वंदना कर विधि पूर्वक पूजा करनी चाहिए । उपनिषद वचनों को दुहराते हुये, मंत्र का उच्चारण करते हुये स्वामी को सुलाना चाहिये । चामरों से स्वामी की सेवा और मूर्ति को चंदन लगाना चाहिए । गन्ने के रस से बनाये गये खीर और भक्ष्मों को जगन्नाथ को नैवेद्य के रूप में चढ़ाना चाहिए । फिर ताम्बूल को शय्यागृह के द्वार पर रखना चाहिये । जगन्नाथ का स्नान, जप, होम, तपस्या, जागरण, उपवास आदि नियमों का आचरण करनेवाला भक्त विष्णुलोक में निवास करेगा । इस उत्सव को देखनेवाला अक्षय सुख को प्राप्त करेगा ।

उत्थापन महोत्सव :

इस महोत्सव में जगन्नाथ स्वामी को माल्यार्पण करके, पूजा करके तथा पूणिमा के रात में मनानेवाले इस उत्सव में नारियल आदि पिष्ट से बनाये गये भक्ष्य भोज्यों का नैवेद्य चढ़ाना चाहिये।

दूसरे दिन सवेरे कार्तिक व्रत के आचरण के लिए संकल्प कर शुक्ल पक्ष एकादशी में जगन्नाथ को जगाना चाहिये। उस आधी रात में जगन्नाथ का पूर्वोक्त विधि से पूजा कर विविध मंगलध्वनियों से, नृत्य गीतों से, स्तोत्रों से स्वामी को नृत्य मंडप के पास लेजाकर उन्हें सुगंध तैल लगाकर, पंचामृतों से, नारियल के पानी से, फल रसों से नहवाकर बाद में उन्हें सुगंधामलक लगाना चाहिये। तुलसीचूर्ण से, गंध चंदन से, कलशोदक से, कुशोदक से, गंध पानी से स्नान कराये गये स्वामी को जो भक्त प्रसन्न होकर देखता है वह बहु जन्मों में किये गये पापों से मुक्त हो जाता है। जगन्नाथ के सर्वांगों में अत्तर को छिडकर, माल्यार्पण कर, विधि प्रकार पूजाकर अंजली देनी चाहिये। फिर भक्त को स्वामी की प्रार्थना करनी चाहिये। उन्हें नृत्य, गीत वाद्यों से कार्यक्रम को देखते हुये रात बितानी चाहिये। वह भक्त सहस्राश्वमेधयाग का फल, कपिल गायों को दान करने का फल तथा सर्वतीर्थों में स्नान करने के पुण्य फल को प्राप्त करेगा। घर के कोने में मंडप का आयोजनकर, सोने से बनी दामोदर की मूर्ति को सालग्राम शिला के पास रखकर पूजा करनी चाहिये। घर को चूना पोतकर अच्छी तरह वस्तुओं से सजाना चाहिए। घर के बिचले भाग में रंगोली डालकर, पलंग पर बिछौने, तकिये रखकर पुरुषोत्तम को

मूर्ति की प्रतिष्ठा करनी चाहिये। उनके वाम भाग में लक्ष्मी को रखना चाहिए। उन लक्ष्मी नारायणों को पचामृत से स्नान कराना चाहिये। फिर विधि प्रकार उनकी पूजा करनी चाहिये। एक सौ दीप वृक्षों को प्रज्वलित करना चाहिये। दामोदर को वस्त्रयुग्म समर्पित कर, गंध का लेपन कर, तीर्थ जलों से अभिषेक कर, विधि प्रकार पूजा कर फिर भक्ष्य भोज्य फलों को नैवेद्य चढ़ाना चाहिये। बांसुरी, वीणादि गीतों से, पुराण पठन से जागरण करते हुये महोत्सव मनाना चाहिये। अष्टाक्षर मंत्र से होम करना चाहिये। लक्ष्मी देवी की श्री सूक्त विधान से पूजा करनी चाहिये। होम के अंत में विप्रों को भोजन खिलाकरआचार्य को दक्षिणा देनी चाहिए। फिर ब्राह्मणों को अन्न खिलाना चाहिए। अंत में दामोदर के विग्रह को आचार्य को समर्पित करना चाहिए। बची वस्तुओं को ब्राह्मणों को दे देना चाहिए।

इस चातुर्मास्य व्रत का अनुष्ठान करनेवाले का प्राप्त फल हजार तिल पापों को, अनंक गायों को, सौ कृष्णाजिनों को तथा कन्याओं के दान करने से प्राप्त फल के समान होता है। उस व्रत का अनुष्ठान किये मानव को साढ़ तीन करोड़ तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त होता है।

## भाग - 40

जैमिनी ने द्विजों को प्रावरणोत्सव के विषय में इस प्रकारबताया- "हे द्विजो ! मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष के षष्ठी तिथि में मनाये जानेवाले प्रावरणोत्सव को जो देखेगा वह वैष्णवलोक का निवासी बनेगा। व्रती, पंचमी तिथि के रात वासोधिवास करना चाहिये। भगवान की मूर्ति के सामने

मंडप पर अष्टदलान्वित पद्म को बनाना चाहिये। विविध दिशाओं के दिक्पालकों की पूजा बाहर करनी चाहिये। मंडप से एक पात्र लेकर प्रोक्षण करना चाहिये। शुभ्रवस्त्र से उस पात्र का आच्छादन करना चाहिरे। इक्कीस वस्त्रों को धूप चढ़ाकर मंत्र का उच्चारण करते हुये उन्हें मंड़प के बीच रखना चाहिये। उन वस्त्रों पर और एक वस्त्र को ढ़ककर पुरुषोत्तम का स्मरण करना चाहिये। जगन्नाथ की मूर्ति की विधि पूर्वक पूजाकर, नृत्य गीतों से रात बितानी चाहिए। उषा वेला वें पूजित वस्त्रों को आच्छादित होने के कारण, बाहर लाना चाहिए। भक्त छत्र, ध्वज पताकाओं से, चामरोंसे, गीत, वाद्य, नृत्यों के साथ फूलों को बिखेरते हुये, प्रासाद और जगन्नाथ की मूर्ति की तीन बार प्रदक्षिणा करनी चाहिये। उन देव-मूर्तियों के मुख को छोड शेष सभी अंगों को सात-सात कपडों से सजाना चाहिए। जगान्नाथ को ताम्बूल, कपूर, तिलक का समर्पण कर, नैवेद्य दूर्वाक्षतों से पूजाकर आरती उतारनी चाहिए।

हेमंत के शुरू में जो भक्त नृसिंहस्वामी को उत्तम बस्त्रों से ओढेगा या देखेगा उसे वातशीतों का ड़र नहीं रहेगा। यह प्रावरणोत्सव विष्णु के लिए ही है। जो इस उत्सव को देखेगा, उसको सभी इच्छाएँ पूरी होंगी। ब्राह्मणों को, गुरूओं को, दीनों को और देवताओं को जो वस्त्रों से सत्कार करेगा वह शीत बाधा से निवृत होगा।"

## भाग - 41

जैमिनी ने विप्रों से पुण्य स्नानोत्सव के विष्य में इस प्रकार बताया- "हे विप्रो। पुष्य मास में पुष्यमी नक्षत्रयुत

पूर्णिमा के दिन जगन्नाथ का पौष्थ स्नानोत्सव मनोना चाहिये। ईशान दिशा में एकादशी के तिथि में अंकुरार्पण कर जगन्नाथ के मंदिर में कार्यक्रम को करना चाहिये। रोज बलि चढ़ानी चाहिये। चतुर्दशी तिथि की रात को इकासा स्वर्ण कुंभों में गाय के घी भरना चाहिये। जगन्नाथ की प्रतिभा के सामने के मध्य भाग में एक बडा दर्पण रखना चाहिये। रात भर जागकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर को सहस्र बार पालाश समिधाओं से, घी से अग्नि कार्य करना चाहिये। दर्पण में स्वामी के प्रतिबिंब को सर्वोपचारों से पूजा करनी चाहिए। पुरूष सूक्त का पठन करते हुये कुंभों को अभिमंत्रित कर, घी से पुरूषोत्तम को स्नान कराना चाहिए। बाद में निर्माल्यों को निकालना चाहिए। फिर चंदन, गंधों का लेपन कर मूर्तियों को यथास्थान पर रख कर वस्त्र, आभूषणों से एवं पुष्प मालाओं से सज ना चाहिए। जगन्नाथ के आयुधों को उनको मूर्ति के सम्मुखरखकर, लक्ष्मी सहित पुरूषोत्तम को रत्नछत्र लगाकर उपहारों को समर्पण करना चाहिए। उसमय शंख, नाद आदि बजाने चाहिए। वेश्याओं को चामर डुलाना चाहिए, सुंदरियों को नृत्य करना और मंगल गीत्त गाने चाहिए। गाय के घी से दीये जलाने चाहिए। फिर आरती उतारनी चाहिए। इसके बाद तांबूल वहाँ रखना चाहिए। अंत में आचार्य को दक्षिणा देनी चाहिए।

जो इस उत्सव को देखेगा उसकी इच्छाएं पूरी होंगी, राज्य, भ्रष्ट को राज्य वापस मिलेगा, अपुत्र और मृतबच्चेवाले दीर्घायु पुत्रों को जन्म देंगे और जो यह पौष्य स्नान करेगा उसका दारिद्रय नाश होकर, जन्म साफ़ल्य होगा।

# भाग- 42

जैमिनी ने द्विजों को मकर संक्रमण विधि इसप्रकार बताया – "हे द्विदो ! जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश कर उत्तर दिशा को प्रयाण करता है उसे उत्तरायण कहते हैं। उस संक्रमण के बीस कलाएँ होंगी। वह पुण्य काल पितृदेव एवं द्विजों को प्रिय लगता है। पुरूषोत्तम क्षेत्र के पुण्य तीर्थ में स्नानकर विधि पूर्वक पूजा करनी चाहिए। उत्तरायण में जो जगन्नाथ के दर्शन करेगा, वह पुनर्जन्म रहित होकर मुक्ति को प्राप्त करेगा।"

मकर संक्रमण का विधान :

जगन्नाथ के समीप उत्सव मूर्तियों को लाकर विधि प्रकार आराधना कर माल्यार्पण करना चाहिए। उन बलराम, श्री केष्ण तय सुभद्रा को मूर्ति यों की तीन बार प्रदक्षिणा करनी चाहिये। उन मूर्तियों को पालकी में चढ़ाकर, जगन्नाथ को तीन बार प्रासाद में घुमाना चाहिये। ध्वज, छत्र पताका लेकर नाचते हुये, उत्सव में प्रयाण करते हुये जगन्नाथ का अनुसरण करनेवाले को अश्वमेधयाग फल प्राप्त होगा। इनकें प्रथम भ्रमण को देखनेवाला पंच महापातकों से दूसरे भ्रमण को देखनेवाला मलिनोकरणों से, तोसरे भ्रमण को देखनेवाला अपात्रोकरणों से तथा चौथे भ्रमणको देखबेवाला उपपातकों से मुक्त होता है।

फिर सवेरे जगन्नाथ स्वामी को गंध चंदनादि का लेपन कर, वस्त्र, मालाओं से अलंकृत कर, यथाविधि पूजा करनी चाहिये। भगबान को आरती उतारकर, कपडं बांधे गये

चावल को सोने के पात्रों में डालकर दधि, घी, नारियल के टुकड़े और अदरक मिलाकर, गंध पुष्प, अक्षतों के साथ उन स्वर्ण पात्रों मे डालकर स्वामी के समक्ष सजाना चाहिये। पकाये गये कर्पूरखण्डचूर्णयुक्त भक्ष्य भोज्यों को तथा दधि कुंभों का नैवेद्य चढ़ाना चाहिए।

पूर्व कल्प में, कश्यप ने इस महोत्सव को मनाया। इस उत्सव को देखने आये हुये लोगों की सभी इच्छाएँ पूरी हो गयीं जो इस महोत्सव को देखेगा वह कल्पान्त तक रहकर मोक्ष को प्राप्त करेगा।

जो भक्त, तुला पुरुष दानादि करेगा, करोड़ों गुण फल को प्राप्त करेगा। उस पुरुषोत्तम क्षेत्र में उत्तरायण पुण्य-काल में किये स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण आदि अक्षय होंगे।

## भाग – 43

जैमिनी ने विप्रों को डोला रोहण के विषय में इस प्रकार बताया – "हे विप्रों! फल्गुणमास में डोलारोहण करना चाहिए। जगन्नाथ को उत्सव प्रतिमा का गोविंद के नाम से आह्वान करना चाहिये। प्रासाद के सामने सोलह खंभों से मन्डप पर मंच बनवाना चाहिए। उस उत्सव को पाँच या तीन दिन मनाना चाहिए।

वह्न्युत्सव :

फल्गुण शुद्ध चतुर्दशी की रात, डोलामन्डप के सामने वह्न्युत्सव मनाना चाहिये। आचार्य को नियुक्त कर काष्ठ

पर मथने से निकली अग्नि को तैयार कर उसे घास के ऊपर रखना चाहिये। उस अग्नि की पूजा कर कूष्माण्ड विधि से होम करना चाहिये। यात्रा समाप्त होने तक उस अग्नि को बचाकर रखना चाहिए। चतुर्दशी तिथि में उत्सव प्रतिमा की सर्वोपचारों से पूजा करनी चाहिये। उस प्रतिमा के ऊपर रखेगये वस्त्र एवं माला को हटाकर, मन्त्रपूर्वक परंज्योति का ध्यान करते हुए फिर उस उत्सव प्रतिमा के ऊपर रखदेना चाहिए। उसे स्नान के लिये मन्डप के पास ले जाना चाहिए। उत्सव के समय विविध तूर्यध्वनि, शंखध्वनि, स्तोत्र आदि श्राव्य होने चाहिये। प्रतिमा के ऊपर फूलों को बरसाना चाहिये। छत्र, चामर, ध्वज, पताका, दीप पंक्ति आदि का आयोजन करना चाहिए। भद्रासन के पास रखे गये वस्त्रों से आच्छादित प्रतिमा को स्नान, विधि पूर्वक उपचारों से, पंचामृतों से करना चाहिए। स्नानांतर अभिषेक करना चाहिए। फिर विग्रह का प्रोक्षण कर अस्त्रों से अलंकार कर, आरती उतारकर, पूजाकर, डोला मंडप के पास लेजाना चाहिए। यात्रा को समाप्ति के बाद उस प्रतिमा को इक्कीस बार घुमाना चाहिये। पूर्व यह यात्रा विधि राजर्षि इन्द्रद्युम्न से सम्पन्न की गई थी।

उस शंखचक्र गदापद्मधारी गोविंद को ब्रह्मादि, सुर सिर झुकाकर, प्रणाम करते हुये उनकी स्तुति करते हैं। गंधर्व, अप्सराएँ, किन्नर, चारणादि दिव्य गायक गान करते हुये नृत्य गीत वाद्यों के साथ उन्हें तृप्त करते हैं। वह उनका स्मरण करते हुये कर्पूर, चूर्ण छिडकना चाहिए। उस जगन्नाथ को दिव्य वस्त्रों से सुसज्जित कर, गंध धूपों से तृप्तिकर, चामरों से सेवा कर, गाकर, स्तुति कर, अर्चना कर, झूले में बिठाकर, सात बार धीरे धीरे झुलाना चाहिए।

उस समय जो भक्त उन्हें देखेगा अवश्य मुक्ति को पायेगा। उससे किये गये ब्रह्महत्यादि पंच महापातक नष्ट हो जाएंगे।

वह जगन्नाथ, लोगों की भक्ति से प्रसन्न होकर भुक्ति और मुक्ति प्रदान करेंगे। उनकी लीलाएँ सहज होकर, अघ एवं अज्ञान को दूर करेंगी। उसके दूसरे डोलोत्सव को देखनेवाललों के गोहत्यादि पाप दूर हो जाएंगे। उनके तीसरे डोलोत्सव का देखनेवालों के सभी पाप दूर होकर, मुक्ति को पायेंगे। जो राजा इस डोलायात्रा को करायेगा, वह चक्रवर्ती बनेगा। जो ब्राह्मण इस उत्सव को करायेगा वह चतुर्वेदी एवं ज्ञानी बनेगा।"

## भाग - 44

जैमिनी ने मुनियों से ज्येष्ठ पंचकव्रत के विषय में इस प्रकार कहा - "हे विप्रो ! फल्गुण मास की पूर्णिमा तिथि में विष्णु को बारह मूर्तियाँ होंगी। एक एक को प्रतिदिन एक-एक महीने के हिसाब से बारह प्रकार कें फूलों से पूजाकर बारह किस्म के फलों का नैवेद्य चढाना चाहिए। बारह तरह के फूल ये हैं - अशोक, मल्लिका, पाटल, कदंबक, करवीर, जातीपुष्प, मालती, शतपत्र, उत्पल, बासंती कुंद, पुन्नाग। ये विष्णु के लिए प्रीतिकर हैं अतः इनसे पूजा करनी चाहिए। अनार, नारियल, आम, कटहल खजूर, तृणराज, प्राचीनामलक, श्री फल, नागरंग, क्रमुक, करमंगक, जातीफल ये बारह फल जो विष्णु के लिए प्रिय हैं, इन्हें भक्ष्य भोज्यादि के साथ नैवेद्य के रूप में चढाना चाहिए। फिर हरि की स्तुति करनी चाहिए। भक्तों को यथाशक्ति बारह सोने की विष्णु - मूर्तियों को बनवाकर, बारह कलशों

में रखकर, गंध पल्लव डालकर, अलग-अलग आम के पत्तों से आच्छादन कर, उन्हें सफद कपडों से ढ़ककर, आठो दिशाओं में प्रतिष्ठित कर उन कलशों में रखो गयी मूर्तियों की पूजा करनी चाहिए। उन मूर्तियों को पचामृतों से नहलाकर, द्वादशाक्षर मंत्र का उच्चारणकर, गोत, नृत्य कर, ब्राह्मणों की पूजाकर, बारह वस्त्र युग्म, छत्र तथा पादुकाएँ अर्पित करनी चाहिए। प्रात: काल तिलों से अष्टोत्तर व सहस्र व्याहृतों से तथा समिधाओं से उन मूर्तियों का होम कर अंत में आचार्य को भोजन खिलाकर दक्षिणा देनी चाहिए। एक सौ चौबीस ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। आचार्य को घडों, चामर, उपस्करों के साथ उन सोने की देव-मूर्तियों को भी अर्पित कर देनी चाहिए। गुंड़िचा यात्रा विष्णु के लिए परम प्रीतिकर हैं। उसे देखने से जो पुण्य मिलेगा वही इस व्रत के आचरण से भी प्राप्त होगा। जो भक्त इस व्रत का पालन करेगा उसे इंद्र पद सार्व भौमित्व पद, एवं अष्टेश्वर्य प्राप्त होंगे। नारद महर्षि पूर्व इस व्रत का बारह वर्ष पालन कर जीवन्मुक्त होगये। व्रती की आयु, ब्रह्मज्ञान एवं वंश वृद्धि होगी।"

# भाग - 45

जैमिनी ने मुनियों से दमन भंजिक यात्रा के बारे मैं इस प्रकार कहा - "हे मुनियो! मैं ने पहले दमन नामक राक्षस के वध के बारे मे बताया। उसकी मृत्यु होने से वहाँ एक तृण पैदा हुआ। उसे जड़से उखाड़कर एक पदमाकार मन्डल के बीच में सत्यभामा सहित विष्णु की उत्सव प्रतिमा को रखकर यथाविधि आधी रात में उनको पूजा करनी

चाहिए क्योंकि उस दैत्य का वध आधी रात के समय हुआ था। राक्षस के अंग से उद्भूत तृण को हाथ जोड़कर विष्णु के एक हाथ में रखना चाहिये। नृत्य, गीत से रात बिताकर, सबेरे जगन्नाथ स्वामी के समीप उस तृण को लेजाकर यथा-विधि पूजा करनी चाहिए। बाद में उसे हरि के सिर पर रखना चाहिए। जो उस समय हरि के मुख को देखेगा वह भवदु:खों से दूर होगा। विष्णु के सिर से उस तृण को निकालकर जो भक्त अपने सिर पर रखेगा वह वैकुठवासी होगा।

## भाग - 46

जैमिनी ने मुनियों से अक्षय यात्रा के विषय में इस प्रकार कहा – "हे मुनियो! वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में द्वितीया तिथि के आधी रात में मन्च का निर्माण करना चाहिए। उसे चूने से पोतकर सफद कपड़े का आच्छादन करना चाहिए। चढ़ने के लिये सीढ़ियों का निर्माण करना चाहिए। उसके बीच भद्रासन बनाकर उस पर रेशमी चादर बिछाकर सोने का पात्र रखना चाहिए। उसकी पश्चिमी दिशा में ब्राह्मण को बैठने के लिए अच्छा आसन लगाना चाहिये और एक कटोरी में पच्चीस प्याले चन्दन, कुकुम को परिशुद्ध जल से मिलाकर पहले बर्तन में डालकर मोगरा पत्रों से ढककर फिर रेशमी कपड़ से लपेटना शाहिए। उस पात्र को सूर्योदय के समय जगन्नाथ के समीप ले जाना चाहिये। उस पात्र को शंख, चामर, छत्रों के साथ मन्दिर में घुमाकर पुरूषोत्तम की पूजा करनी चाहिए। श्री सूक्त का यथाविधि उच्चारण करते हुये स्वामी के सभी अंगों में पात्र के भीतर

के सुगंध द्रव्य का लेपन करना चाहिये। उस समय वैष्णव पुरूषोत्तम की स्तुति करनी चाहिए।

जगन्नाथ को बाँसुरी व वीणा ध्वनियों से, नृत्य गीत वाद्यों से, छत्रचामरों के उपचारों से तृप्त कर, उपहार भेंटकर तृतीया तिथि में सुगन्ध द्रव्यों का लेपन करना चाहिए। जो इस कार्यक्रम को देखेगा उसके सभी पाप भगवान हर लेंगे। जगन्नाथ की महिमा अपरंपार है। बाद में भगवान को वस्त्र, पुष्प मालाएँ, भक्ष्य भोज्यादि, तांबूल का अर्पण कर जगन्नाथ की पूजा करनी चाहिए। उस समय जो कृष्ण के दर्शन करेगा, वह पुनर्जन्म रहित होकर विष्णुलोकनिवासी बनेगा। पूर्व, दक्ष प्रजापति भी पुरूषोत्तम क्षेत्र में जाकर, उनकी मूर्ति पर चंदन लगा कर स्तुति कर उनके चरण कमलों पर गिरा।"

जगन्नाथ स्वामी ने दक्षप्रजापति से कहा कि यदि तुम मेरे उत्सव को मनाओगे तो तुम्हें सुख दिलाऊँगा। जो इस अक्षय यात्रा को देखेगा उसकी इच्छाएँ पूरी होंगी। मेरी प्रेरणा से तुमने इस उत्सव को मनाया अतः तुम्हारा संताप दूर हो गया और उसी प्रकार दीन जनोद्धरण भी हुआ। गुंडिचादि बारह महायात्राएँ हैं। उनमें से किसी एक का भी कोई देखेगा, वह विष्णु पद को प्राप्त करेगा। इस प्रकार कह कर जगन्नाथ स्वामी अंतर्धान हो गये।

दक्ष ने जगन्नाथ के आज्ञानुसार, नीलाचल में एक वर्ष तक महोत्सवों को मनाया। किसी भी प्रकार जगन्नाथ के दर्शन करनेसे, स्वामी उसे अवश्य मुक्ति दिलायेंगे। व्रत से, तपोदान से, यज्ञों के आयोजन से, अष्टांग योग आदि से जो पुण्य पल प्राप्त होते हैं, वही फल श्री पुरूषोत्तम क्षेत्र के पुण्य तीर्थ में स्नान करने से काष्ठमयी ब्रह्मस्वरूप जगन्नाथ के दर्शन से, स्तुति से, पूजा से प्राप्त होता है।

# भाग - 47

जैमिनी ने मुनियों को जगन्नाथ की विभूति के बारे में इस प्रकार कहा– "इस विश्व में विष्णु के विभूति सभी चराचर हैं। विभूति और भूतिप्रद दोनों परमेश्वर एक ही है। जो जिस उद्देश्य से कम करता है, भगवान उसे उसी अनुसार जन्म देता है।

जो भक्त जिस प्रकार भगवान् की उपासना करता है वह उसी प्रकार का फल पाता है। धर्मादि चारों प्रकार के पुरूषार्थ फल के लिए काष्ठदेह धारी वह जगन्नाथ ही सहारा है।"

धर्मस्वरूप :

धर्म का मार्ग गहरा है लेकिन भगबान उसे अनुसरण करने योग्य कर रहे हैं। भगवान् विष्णु ही धर्म हैं। यह सारा विश्व धर्म का मूल है धर्म तथा लोक के लिये जनार्दन ही प्रभु हैं। भक्त, अनेक इच्छाओं से विष्णु की उपासना करते हैं तो भगवान भी विभिन्न देहों को धारण कर, विविध नामों से स्तुत्य होकर भक्तों की इच्छाओं को पूरा कर रहे हैं। भगवान् भक्तों को अनेक प्रकार की संपदाएं एवं ऐश्वर्य दे रहे हैं। दयासागर विष्णु ने उस नीलाचल पर निवास करते हुये, दीन एवं अनाथों के अनुग्रह के लिए काष्ठमय देह का धारण किया है।"

जैमिनी ने विप्रों को उस पुरूषोत्तम क्षेत्र में जाकर रहने के लिये, उनके चरणों का आश्रय पाने के लिए तथा जीवन के अंत में मुक्ति पाने के लिए कहा।

# भाग- 48

मुनियों ने जैमिनी से इन्द्रद्युम्न के विषय में बताने को कहा तो जैमिनी ने इस प्रकार जवाब दिया – "हे मुनियो! जगन्नाथ द्वारा वर प्राप्त करने पर, इन्द्रद्युम्न नृपति ने अपने को कृतकृत्व समझा। जगन्नाथ की आज्ञानुसार इन्द्रद्युम्न ने बारह पुण्य एवं मोक्षप्रद यात्राओं को मनाया और स्वामी ने जो आज्ञा दी उसी को इन्द्रद्युम्न ने गाल राजा को इस प्रकार बताया –

हे गाल राजा! जगन्नाथ सारे विश्व के लिये गुरु हैं। वे मुझ पर अनुग्रह करने के लक्ष्य से जगन्नाथ स्वामी के रूप से पुरूषोत्तम क्षेत्र में अवतरित हुये। दीनजनोद्धार के लिये वे यहाँ चिरकाल से उद्भूत हुये हैं। आप श्रद्धा भक्ति के साथ उनकी आज्ञा का पालन करें। उनको आप केवल प्रतिमा स्वरूप न मानें। ब्रह्मा, सुर, नर, गंधर्व, देवतादि जगन्नाथ स्वामी के प्रासाद में प्रवेश करते हुये आपने प्रत्यक्ष देखा। जगन्नाथ चराचर होने पर भी लोकानुग्रह के लिये उन्होंने काष्ठ रूप का धारण किया। उन्हें कल्पवृक्ष मानें। यतीश्वर उनके निज तत्व को नहीं समझ पा रहे हैं। जगन्नाथ उनको मोक्ष दे रहे हैं जो परिशुद्ध आत्मावाले, धर्मनिष्ठावाले, अनन्य भक्तियुक्ति वाले योगी हैं। पुरूषोत्तम के दर्शन से लोगों के त्रिपाददुःख दूर होजाते हैं। माँ, बाप, पुत्र, मित्र कोई भी किसी का उपकार नहीं कर सकते। अतः अवश्य जगन्नाथ की सेवा करें। सदा स्वामी की पूजा कर श्रेष्ठ निर्वाण को पावें।"

जैमिनी ने मुनियोंसे जगन्नाथ क्षेत्र की महिमा को सुनने से प्राप्त फल के बारे में इस प्रकार कहा- "हे मुनियो! श्वेत राजा ने भी हमारी तरह भगवान् के वचनों को सुना।

इन्द्रद्युम्न नारद मुनि के साथ ब्रह्मलोक गये। जो काष्ठरूप ब्रह्म स्वरूप की महिमा को सुनेगा, वह अश्वमेघ याग फल को प्राप्त करेगा। इस महिमा का कीर्तन करने से करोड़ गुना पुण्य प्राप्त होगा। सबेरे इनकी महिमा को सुननेवाला एक सौ कपिल गायों के दान का पुण्य एवं गंगापुष्कर में स्नान करने के पुण्य को प्राप्त करेगा। इन्हें सुनेनवाले भक्तों को यश, आयु, पुण्य, संतानवृद्धि, मोक्ष के साथ सर्वपाप भी दूर होजाएँगे।"

## भाग – 49

जैमिनी ने मिनियों को पुराण श्रवण से प्राप्त फल के विषय में इस प्रकार बताया - "हे मुनियो ! पुराण प्रवचन करनेवाले विप्र को आदर के साथ आमंत्रित करना चाहिये। पौराणिक प्रवचन के पहले व्यास महर्षि की सकलोपचार से पूजा करने के बाद उन्हें उच्चासन पर बिठाना चाहिये। उस पंडित को धवल वस्त्र का धारण कराकर माथे पर तिलक लगाना चाहिए और श्रोताओं को भगवान के प्रति पंडित पर विश्वास दिलाना चाहिये। पुराण श्रवण के बाद श्रोताओं को जय कृष्ण। जय जगन्नाथ !; हरि ! आदि नामों से भगवान् को स्तुति करनी चाहिये। प्रवचन के बाद भक्त उस विप्र को वस्त्र तथा दक्षिणा प्रदान करें।

पुराण-पठन से भक्त यज्ञ, दान, व्रतादि के फल को पाते हुये अन्त में मोक्ष का प्राप्त करते हैं। प्रवचन करनेवाले विप्र को दान देने से भगवान् के प्रति प्रीति पैदा होकर, अंत में उनके पाप, ताप आदि दूर हो जाएँगे। पुराण-पठन की समाप्ति के बाद ब्राह्मणों को मिष्टान्न भर-पेट खिलाना चाहिये।" इस प्रकार बताये गये जैमिनी महर्षि का मुनियों ने यथाशक्ति सम्मानित किया।

—) (—